परिचय

विश्व-साहित्य ग्रन्थमाला के संचालकों ने संसार के श्रेष्ठ साहित्य का हिन्दी में अनुवाद करने का संकल्प किया है। इस माला में कहानी, उपन्यास, इतिहास, दर्शन, प्राचीन साहित्य आदि सर्वोपयोगी विषयों पर अन्य भाषाओं की चुनी हुई पुस्तकों के अनुवाद और मौलिक ग्रन्थ, पृथक् पृथक् विभागों में, प्रकाशित किये जायंगे। प्रस्तुत पुस्तक ' प्राचीन साहित्य विभाग ' का प्रथम ग्रन्थ है। महाकवि दिङ्नाग का यह " कुन्दमाला " नामक नाटक, कुछ ही समय पूर्व उपलब्ध हुआ है और अपनी श्रेष्ठता के कारण साहित्यक समाज में बहुत ख्याति प्राप्त कर रहा है। कविकुल गुरु कालिदास के प्रतिद्वन्दी महाकवि दिङ्नाग की यह अमर कृति निस्सन्देह इतनी उच्च है कि इसे विश्व-साहित्य ग्रन्थमाला के ' प्राचीन साहित्य विभाग ' का प्रथम ग्रन्थ बनाकर माला के संचालक गर्व अनुभव कर सकते हैं।

यह अनुवाद गुरुकुल विश्वविद्यालय के संस्कृत साहित्य के उपाध्याय श्रीयुत वागीश्वर विद्यालंकार का किया हुआ है। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि यह अनुवाद केवल चन्द दिनों में किया गया है। जो लोग मूल संस्कृत कृति के साथ इस अनुवाद का

किया है जिसके लिये वे अवश्य ही पाठकों के धन्यवाद के पात्र हैं । हमने इसी संस्करण के मूल संस्कृत पाठ का हिन्दी अनुवाद पाठकों की भेंट करने का यत्न किया है । अनुवाद कैसा हुआ है, इस सम्बन्ध में कुछ कहने का साहस हम नहीं कर सकते । महाकवि कालिदास ने ठीक लिखा है—

"आपरितोषाद् विदुषां न साधुमन्ये प्रयोग विज्ञानम् ।
वलवदपि शिक्षितानामात्मन्य प्रत्ययं चेतः ॥" (शाकुन्तल)।

मूल ग्रंथकर्त्ता—दिङ्नाग

प्रतीत होता है कि किसी समय संस्कृत के विद्वानों में इस नाटक का विशेष आदर तथा प्रचार था किन्तु काल-क्रम से किसी प्रकार बीच में इस का लोप हो गया । १३६५ ईस्वी सन् के लगभग विद्यमान, विश्वनाथ कविराज ने अपने बनाये प्रसिद्ध साहित्य ग्रन्थ साहित्यदर्पण के छटे परिच्छेद में इसे उद्धृत (१) किया है ।

---

(१) यथा कुन्दमालायाम् (नेपथ्ये) इत इतोऽवतरत्वार्या ।
सूत्रधारः- कोऽयं खल्वार्याऽऽह्वानेन साहायकमपि मे संपादयति ? (विलोक्य) कष्टमति करुणं वर्तते—
लंकेश्वरस्य भवने सुचिरं स्थितेति रामेण लोकपरिवादभयाकुलेन ।
निर्वासितां जनपदादपि गर्भगुर्वी सीतां वनाय परिकर्षति लक्ष्मणोऽयम् ॥
(साहित्यदर्पण छटा परिच्छेद)

भोजराजचरित शृङ्गार प्रकाश तथा महानाटक में भी इसका एक पद्य (१) उपलब्ध होता है।

अन्यत्र भी एक दो ग्रन्थों (२) में कुन्दमाला का नाम देखने में आया है, किन्तु इन सभी स्थलोंमें ग्रन्थ के साथ ग्रन्थकर्त्ता के नाम तक का उल्लेख नहीं किया गया, उसके विषय में कुछ अधिक परिचय की तो बात ही क्या ? स्वयं कवि ने भी प्रस्तावना में अपने नाम (दिङ्नाग) तथा अपने ग्राम के नाम (अरारालपुर) के अतिरिक्त कुछ भी अधिक बात अपने सम्बन्ध में नहीं लिखी। इस दशा में उसके जीवन की घटनाओं के विषय में कुछ प्रकाश डाल सकना हमारे लिये अत्यन्त कठिन है।

दिङ्नाग या धीरनाग

तंजौर राज्य के पुस्तकालय में कुन्दमाला की जो हस्तलिखित

---

(१) द्यूते पणः प्रणयकेलिषु कण्ठपाशः क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते।
शय्या निशीथकलहे हरिणेक्षणायाः प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम्॥

(शृङ्गार प्रकाश)

(२) शारदा तनय कृत-भावप्रकाश, काव्य कामधेनु।

प्रति विद्यमान है, उसमें कवि का नाम 'धीरनाग' तथा ग्राम का नाम अनूपराध लिखा है। इससे सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि लेखक का वस्तुतः क्या नाम है? दिङ्नाग की तरह धीरनाग भी एक बौद्ध विद्वान् हुआ है, यह बात 'सूक्ति मुक्तावली' से पता चलती है, किन्तु यह नहीं कहा जासकता कि दिङ्नाग तथा धीरनाग किसी एक व्यक्ति के दो नाम हैं अथवा भिन्न भिन्न व्यक्तियों के।

बौद्ध विद्वान्-दिङ्नाग (३४५ ई० से ४२५ ई० तक)

डाक्टर सतीशचन्द्र (१) विद्याभूषण ने दिङ्नाग को भारतीय आधुनिक-तर्कशास्त्र का पिता लिखा है। डाक्टर महोदय ने तिब्ब-तीय साहित्य के आधार पर इस विषय में बहुत आलोचन किया है, जिसका सार (२) बहुत संक्षेप में निम्न प्रकार है—

मद्रास प्रान्त में, कांची के निकट, सिंहवक्त्र नामक नगर के एक ब्राह्मण परिवार में दिङ्नाग का जन्म हुआ था। नागदत्त ने

---

(१) 'भारतीय तर्कशास्त्र का इतिहास' सतीशचन्द्र विद्याभूषण कृत।

(२) 'तत्त्व संग्रह' की अंग्रेज़ी भूमिका। विनयतोष भट्टाचार्य लिखित पृष्ठ संख्या LXXIV. बड़ौदा सीरीज़।

उसे बौद्ध-सम्प्रदाय के हीनयान-मार्ग में दीक्षित किया । तत्पश्चात् वह वसुबन्धु (१) नामक बौद्ध पण्डित का शिष्य हुआ और इससे उसने हीनयान तथा महायान दोनों मार्गों के ग्रन्थों का अध्ययन किया। उसे नालन्दा विश्वविद्यालय में आमन्त्रित किया गया—जहां जाकर उसने वहां के प्रसिद्ध आचार्यों को वाद-विवाद में परास्त कर 'वादि पुङ्गव' की उपाधि प्राप्त की। उसका कार्य प्रायः यत्र तत्र यात्रा करना और उसमें बड़े बड़े दार्शनिकों को शास्त्रार्थ में पराजित कर उन्हें बौद्ध सम्प्रदाय में दीक्षित करना था। उसके (२) ग्रन्थों का तिब्बतीय भाषा में अनुवाद 'परमार्थ' (३) ने किया। प्रायः इन सभी ग्रन्थों के मङ्गलाचरण में दिङ्नाग ने सुगतबुद्ध को प्रणाम किया है. इन सब बातों से स्पष्ट सिद्ध है कि वह कट्टर बौद्ध तथा हिन्दू सम्प्रदाय का प्रबल विरोधी था । हमें अत्यन्त आश्चर्य है कि एक कट्टर बौद्ध ने किस प्रकार ऐसा नाटक लिखा जिसकी न केवल कथावस्तु ही हिन्दू सम्प्रदाय की सम्पत्ति है

---

(१) वसुबन्धु का काल (२०० ईस्वी सन् से ३६० ईस्वी सन् तक)

(२) क. प्रमाण समुच्चय ख. हेतु चक्र डमरु ग. प्रमाण समुच्चय-वृत्ति घ. न्यायप्रवेश ङ. आलम्बन परीक्षा च. त्रिकाल परीक्षा ।

(३) परमार्थ का काल (४९९ ईस्वी सन् से ५६९ ईस्वी सन् तक)

किन्तु सारा ग्रन्थ ही हिन्दू रंग मे रंगा हुआ है । एक वाक्य-
नहीं नहीं एक शब्द भी ऐसा नहीं दीखता, जिस में बौद्धपन क
झलक हो । विद्वज्जनोचित उदारता की पराकाष्ठा कह कर हम इ
विरोध का समाधान नहीं कर सकते, अवश्य ही यहां कुछ अन
रहस्य निगूढ़ है । हमारा यह तात्पर्य नहीं कि बौद्ध कवि राम
चरित्र को अपने ग्रन्थ का विषय नहीं बना सकता । कितने ह
बौद्ध कवियों ने इस प्रकार का सुन्दर साहित्य लिखा है, कि
उसमें मंगलाचरण आदि के रूप में कहीं न कहीं बौद्धप
प्रस्फुटित अवश्य होजाता है । अथवा यह भी सम्भव है कि दिङ्ना
ने बड़ी आयु में बौद्ध धर्म को दीक्षा ली हो और वह उससे पहि
ही कुन्दमाला नाटक लिख चुका हो । अब हम इस पुस्तक
कुछेक ऐसे अंशों पर विचार करते हैं जो हिन्दू धर्म विरोधी कह
बौद्ध की लेखनी से नहीं निकल सकते ।

क. मङ्गलाचरण के प्रथम श्लोक में हिन्दू पद्धति के अनुस
गणेश को प्रणाम किया गया है—

सुरपति सिर मन्दार स्रग् मधुपायी सुख मूल ।
पी ले विघ्न पयोधि को श्रीगणपति पद धूल ॥

अर्थात् विघ्न विनाशक गणेश जी के चरणों की वह धूल जि
में प्रणाम करते हुए इन्द्र की मन्दार माला का मकरन्द मिल गय

हमारे विघ्न-समुद्र को सुखा दे। मंगलाचरण का दूसरा श्लोक शिव की जटाओं के सम्बन्ध में है—

उत्कट तपोमय अग्नि की मानो उठी ज्वालावली
गंगा-तरंग-भुजंग-गृह वल्मीक सी शोभास्थली।
कोमल बिसाङ्कुर चारु विधु को स्थायि-सन्ध्याकाल सी
शिव की जटा सुख दे तुम्हें नव भानु के भा-जाल सी॥

अर्थात् प्रबल तपोमय अग्नि की ज्वालाओं के समान पीली पीली, गंगा-तरंग-रूपी सर्पों के रहने के लिये वल्मीक सदृश, कमल के अंकुर जैसी, चन्द्रकला के लिये सदा स्थिर रहने वाली लाल पीली सन्ध्या वेला तुल्य अथवा उदय होते हुए नव-सूर्य के प्रभाजाल-सी शिव-जटा तुम्हें सदा सुखकारी हो। कैसा शुद्ध पौराणिक भाव है। इन बातों की संभवतः हंसी उड़ाने वाला बौद्ध कवि स्वयं विश्वास न करता हुआ क्यों इस प्रकार की कल्पना करे, यह बात हमारी समझ में नहीं आती।

ख. बुद्ध भगवान् के समय यज्ञों में पशु-हिंसा होती थी इसलिये उन्होंने यज्ञों तथा वेदों के तात्कालिक अर्थों के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया था। बौद्धों की दृष्टि में यज्ञ का कुछ भी महत्व या सौन्दर्य न था, किन्तु हम देखते हैं कि कुन्दमाला के रचयिता को यज्ञों तथा वेदों में बड़ी श्रद्धा है। देखिये —

यज्ञाग्नि थी स्थापित, मित्र लोग पाते जहां थे सब सौख्य भोग।
प्रासाद वे चारु, बिना तुम्हारे होंगे उन्हें भी वन-तुल्य सारे॥
कुन्द० १

केवल एक धनुप के बल सब भूमण्डल अपना कर
सौ यज्ञों से मार्ग स्वर्ग का सुन्दर सरल बना कर।
रघुवंशी दे भुवनभार पुत्रों को चौथे पन में
मोक्षसिद्धि के लिये सदा से आते हैं इस वन में॥
कुन्द० ४

इस पद्य में कवि ने यज्ञों द्वारा स्वर्ग की प्राप्तिमें अपना विश्
प्रकट किया है।

दाव-दहन को यज्ञानल-सा, यूप द्रुमों को मान
विहंगों के कलरव को कोमल मुनिजन साम समान।
गौरव से इन वन-हरिणों को समझ तपोधन शान्त
ज्यों त्यों कर पद धरता हूँ मैं इस नैमिश के प्रान्त॥
कुन्द० ४-४

इस पद्य में भी दावानल रूप यज्ञाग्नि, द्रुमरूपी यूप तथ
पक्षियों के कलरव रूपी सामगान कवि के हिन्दू हृदय की घोषणा
कर रहे हैं। इस प्रकरण के ६, ७, ८, ९, १०, ११ तथा १
ये सभी पद्य कहीं सामगान से गूंज रहे हैं तो कहीं होम धूम स
व्याप्त हो रहे हैं।

ग. हमारे स्मृति ग्रन्थों में सन्तान तथा सहधर्माचरण—ये दो विवाह के फल प्रतिपादन किये गये हैं। यज्ञ करने का अधिकार भी पति को पत्नी के साथ ही है पृथक् नहीं। नीचे लिखे पद्यों में कवि ने अपने कर्मकाण्ड ज्ञान का भी परिचय दिया है। देखिये—

सुत, हुत—ये दो फल पत्नी के बतलाते हैं पण्डित।
पहला तुम से मिला, दूसरा भी देकर गृह मण्डित॥

कुन्द० अङ्क ६।

दैव-योग से हुए, आपके, शुभ-दर्शन से प्यारी—
शुद्ध प्रकाशित हुई, यज्ञ में बनी पुनः अधिकारी॥

कुन्द० अङ्क ६।

घ. कवि को प्रणव ओङ्कार का भी ज्ञान है—

मैं ही हूं ओङ्कार सहचरी-कहते हैं सब मुनिजन।
मुझ से ही उत्पन्न हुआ है सकल चराचर त्रिभुवन॥

कुन्द० अङ्क ६।

ङ. बौद्धधर्म में बालकपन से ही भिक्षु हो जाना श्रेष्ठ समझा जाता है, किन्तु हिन्दू-धर्म मे प्रत्येक आश्रम में क्रम से जाने का गौरव है। कुन्दमाला का रचयिता भी आश्रम व्यवस्था का पक्षपाती प्रतीत होता है भिक्षु-धर्म का नहीं। देखिये—

केवल एक धनुष के बल सब भूमण्डल अपना कर
सौ यज्ञों से मार्ग स्वर्ग का सुन्दर सरल बना कर।
रघुवंशी दे भुवनभार पुत्रों को चौथे पन में
मोक्ष सिद्धि के लिये सदा से आते हैं इस वन में ॥

छन्द० ४-५।

८. कवि की दृष्टि में रामचन्द्र विष्णु भगवान् के अवतार थे। अपने इस विचार को उसने कई स्थलों पर प्रकट किया है देखिये—

पूज्य महारथ नृप दशरथ की पुत्रवधू सुकुमारी।
राम नाम भगवान् विष्णु की पत्नी सीता प्यारी ॥

छन्द० १-२१।

निश्चय ही श्रीराम नाम का हरि यह वन में आया ॥

छन्द० ३-१४।

ग्रन्थ का आशीर्वाद सम्बन्धी अन्तिम पद्य भी शुद्ध हिन्दू भाव का प्रचार है—

शिव ब्रह्मा नारायण [illegible] पावक पवमान ।
परम पवित्र वेद व चारों, तीनों लोक महान ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible]

इस पद्य पर कुछ टिप्पणी करना सूर्य को दीपक दिखाना है। न्दमाला सिर से लेकर पैर तक शुद्ध हिन्दू-नाटक है। किसी ात्यन्त पुष्ट प्रमाण के बिना इसे बौद्ध कवि की कृति मानना मारे लिये सम्भव नहीं। कवि के नाम के सम्बन्ध में हमारा वाद नहीं। हम मानते हैं कि कुन्दमाला का प्रणेता कोई ड्नाग नाम वाला कवि ही होगा किन्तु इस नाटक को उसने जस समय लिखा तब वह बौद्ध न था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् दिङ्नाग तथा कुन्दमाला के कर्त्ता दिङ्नाग का निवास-स्थान-भेद ी इस विषय में प्रमाण है।

कालिदास और दिङ्नाग

कई वर्ष हुए, हमने अपने कालिदास-सम्बन्धी निबन्ध में हुत से प्रबल प्रमाणों से यह सिद्ध किया था कि कालिदास को ुग वंश के राजा अग्निमित्र से पृथक् नहीं किया जा सकता। कालिदास का ईस्वी सन् से पूर्व (विक्रम संवत् के प्रारम्भ के लगभग) ोना हमारी दृष्टि में २×२=४ के समान निर्विवाद है किन्तु ह विषय यहां अप्रासंगिक है इसलिये ग्रन्थ विस्तार के भय से हमे अपने इस प्रलोभन को बलात् संवरण करना पड़ता है। हमारी सम्मति में दिङ्नाग कालिदास का समसामयिक

नहीं हो सकता । कुन्दमाला भवभूति कृत उत्तर रामचरित से प्राचीन अवश्य है । वह सीधी वाल्मीकि-रामायण के पाठ के आधार पर बनाई गई है किन्तु उसमें कालिदास के बहुत से पद्यों की छाया स्पष्ट दीख रही है जो यह सिद्ध करती है कि दिङ्नाग कालिदास से अर्वाचीन है । उदाहरणार्थ देखिये—

रघुवंश चतुर्दश सर्ग में सीता को छोड़ कर लक्ष्मण के चले जाने पर कालिदास ने सीता-विलाप का कारुणिक वर्णन किया है—

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः ।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि ॥

ऐसे ही प्रसंग में इसी भाव को कुन्दमालाकार ने इस प्रकार विकसित किया है—

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति ।
नृत्यं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं
तिर्य्यग्गता वरममी न परं मनुष्याः ॥ १-१८ ॥

दोनों ही पद्यों में—सीता के दुःख में दुःखी होकर मयूरों ने नाचना छोड़ दिया है, हरिणों ने हरी घास से मुंह फेर लिया है । कालिदास के पद्य में वृक्ष भी रो रहे हैं, उनके पुष्प बन कर बरस रहे हैं, किन्तु कुन्दमाला में शोक विकल

ंसों का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ रहा है। यह सारा भाव श्लोक के तीन चरणों में आगया और चौथा चरण खाली ही रहा जा रहा था तो दिङ्नाग ने उपसंहार करुण में पूरा कर दिया —'तिर्यग्योनि' को प्राप्त ये पशु-पक्षी भी मानव-हृदय से श्रेष्ठ है।

आश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में हम ऊपर लिख चुके हैं, किन्तु कालिदास के पद्यों से तुलना करने की दृष्टि से कुछ पुनरुक्ति करनी पड़ती है। आशा है पाठक क्षमा करेंगे—

आ ! अस्त्येतदन्त्यं कुलव्रतं पौरवाणाम्—
भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम्।
नियतैक पतिव्रतानि पश्चात्तरुमूलानि गृही भवन्ति तेषाम्॥

शाकु०।

दुष्यन्त कहता है कि हां, हम पुरुवंशियों का अन्तिम कुल-कर्त्तव्य तो यही ठहरा न कि जो पृथिवी का पालन करने के लिये पहले समस्त सांसारिक सुखों से समृद्ध राजमहलों में निवास किया करते हैं वे ही पीछे जितेन्द्रिय धर्मपत्नी के साथ वानप्रस्थी हो तपोवन में जाकर वृक्ष की छाया में भी रहते है। अब शाकुन्तल के नमूने भी देखिये—

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।

भर्त्रा तदर्पित कुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥
शाकु०

पति के घर पहिले पहिल जाती हुई पितृ-प्रेम-कातर पुत्री शकु-
न्तला पिता कण्व से पूछती है कि आप मुझे फिर कब बुलावेंगे।
वनवासी कण्व उत्तर देते हैं—बहुत दिनों तक, चार समुद्रों से
घिरी पृथिवी की सपत्नी अर्थात् सार्वभौम महाराज की प्रधान महिषी
रह कर, सब सांसारिक सुखों का उपभोग कर, दुष्यन्त द्वारा अपने
गर्भ से उत्पन्न, योग्य पुत्र पर परिवार तथा राज्य का भार डाल
वानप्रस्थी बन पति के साथ तुम इस शान्त तपोवन में फिर
आवोगी। और भी —

प्रथम परिगतार्थन्तं रघुः सन्निवृत्तं
विजयिनमभिनन्द्य श्लाघ्यजायासमेतम् ।
तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोऽभू-
न्नहि सतिकुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ॥ रघु०।

अज ने इन्दुमती को स्वयम्वर में प्राप्त किया तथा प्रतिद्वन्द्वी
सब राजाओं को भी युद्ध में अपने बाहुबल से परास्त किया, यह
शुभ समाचार रघु को पहिले ही विदित हो चुका था। उसके पहुं-
चते ही रघु ने परिवार तथा राज्य का भार उसके कन्धों पर डाल
शान्तिमार्ग का आश्रय लिया क्योंकि उत्तराधिकारी के योग्य हो

जाने पर सूर्यवंशी घर में नहीं पड़े रहा करते। इसी भाव को दिङ्-
नाग ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

आनाकमेकधनुषा भुवनं विजित्य पुण्यैर्दिवः क्रतुशतैर्विरचय्य मार्गम्।
इक्ष्वाकवः सुतनिवेशितराज्यभारा निःश्रेयसाय वनमेतदुपाश्रयन्ते॥
कुन्द० ४-५।

पद्य का हिन्दी अनुवाद ऊपर दिया जा चुका है। पाठक देखें
सी समानता है? आगे चलिये—

क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः।
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान् मन्दारशून्यानलकांश्चकार॥रघु० ६।

अर्थात् यह राजा निरन्तर, एक के बाद दूसरा यज्ञ करता ही
रहता है जिसके कारण इन्द्र को सदा ही अमरावती से दूर रहना
पड़ता है। परिणाम यह हुआ है कि सदा ही विरहिणी रहने वाली
बेचारी शची (इन्द्राणी) के अलक उसके फीके कपोलों पर
बिखर गये हैं और वह उन्हें मन्दार की माला से अलंकृत नहीं
[illegible] अब कुन्दमाला की ओर आइये—

एतस्मिन् विततध्वरं प्रतिदिनं सान्निध्ययोगाद्धरे—
न्यक्कृता नन्दनचन्दनवनिस्थानालतनं प्रापिताः।
विश्रान्त्युपनिवेशितेन नयनेनाऽऽलोकनीया अमी
मत्तैरावणकण्ठकण्डुवलयन्यासानुगानि पादपाः॥ कुन्द० ४-

सचकितमवधाय कर्णमस्मिन् सुरपतिकर्पणमन्त्रनिःस्वनेषु ।
विरचयती शची सदैव नूनं स्रजमवधूयवियोगवेणिबन्धम् ॥
कुन्द० ४-८

अर्थात् "इस नैमिशारण्य में सदा ही यज्ञ होते रहने के कारण इन्द्र को निरन्तर यहीं रहना पड़ता है, जिस से नन्दनवन के बदले अब यहां के वृक्षों में ऐरावत हाथी बंधता है, जिसके गले की रस्सी के रगड़ने के निशान आंख ऊपर उठाकर इनमें देखे जा सकते हैं। इस वन में उच्चारण किये जाते हुए इन्द्र के आवाहन इन मन्त्रों को व्याकुलता के साथ सुन सुन कर बेचारी शची पुष्पमाला को छोड़ कर सदा ही वियोग-सूचक एक-वेणी बनाये रहती है।" दोनों ही स्थलों में यज्ञों की निरन्तरता और उनसे इन्द्र की सदा उपस्थिति तथा शची का वियोगिनी होकर पुष्पमाला को छोड़ वियोग सूचक वेणी धारण करना समान है। अध्वर शची आदि शब्द भी ज्यों के त्यों उभयनिष्ठ हैं। कालिदास का एक और भी श्लोक इस प्रसङ्ग में बार बार हमारी स्मृति में झांक रहा है, उसे भी क्यों नज़रबन्द रक्खें—

तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः ।
गजवर्ष्मकिरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ॥ रघु० ४ ।

अपनी सेना-सहित रघु जब पहले पड़ाव को छोड़ कर आ

निकल जाता था तो वहाँ वनवासी किरात लोग आकर, देवदारु के वृक्षों में गले की रस्सी की रगड़ के निशानों को देख कर उनमें बँधे हाथियों की ऊँचाई का अनुमान करते थे। 'कालिदास के सामान्य हाथी 'दिङ्नाग' के सम्बन्ध में आकर ऐरावत हो गये। हिमालय के देवदारु सामान्य वृक्ष बन गये। कण्ठरज्जुक्षत दोनों में कूटस्थ है। भाव में भी पर्याप्त समानता है।

कालिदास के दिलीप को देखिये—

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥ रघु० १।

दिङ्नाग का राम इसी का प्रतिबिम्ब है—

व्यायामकठिनः प्रांशुः कर्णान्तायतलोचनः।
व्यूढोरस्को महाबाहुर्व्यक्तं दशरथात्मजः॥ कु० ३-१५।

'दिङ्नाग के कर्णान्तायतलोचनों से पाठक विस्मित न हों। वे उसके अपने नहीं हैं। किसके हैं वह देखिये

कामं कर्णान्त विश्रान्ते विशाले तस्य लोचने।
चक्षुष्मत्तातु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना॥ रघु० ५।

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के प्रथम श्लोक के उत्तरार्ध पर दृष्टि डालिये -

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखीधृतैक वेणी।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीलाममदीर्घविरहव्रतं बिभर्ति ॥शाकु०

आपाण्डुरेण मयि दीर्घवियोगखेदं लम्बालकेन वदनेन निवेदयन्ती।
एषा मनोरथशतैः सुचिरेण दृष्टा कापि प्रयाति पुनरेव विहाय सीता॥
कुन्द० ४१-३।

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोलकवरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्त्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी।
उत्तर० ३-४।

दुश्चारिणी होने का मिथ्या दोष जान बूझ कर लगाया, अपमान पूर्वक निकाल देने वाले उसी लम्पट पति को पुनः प्राप्त करने के लिये कठोर तपस्या करने के कारण जिस के भरे हुए सुन्दर कपोल क्षाम अर्थात् दुर्बल हो गये हैं, अपने शरीर की सुधबुध न रहने से जिसके वस्त्र मलिन हो रहे हैं, जिसने सब शृङ्गारों को छोड़, सिर के बालों को यूंही इकट्ठा कर बांध लिया है, ऐसी सती साध्वी शकुन्तला को देखकर विलासी दुष्यन्त का हृदय पश्चात्ताप की अग्नि में संतप्त होकर शुद्ध हो जाता है, कलुषित वासना के स्थान में पवित्र प्रेम का प्रादुर्भाव होता है, मर्त्यलोक के प्राणी स्वर्ग सुखोपभोग करने लगते हैं। कालिदास की शकुन्तला के बाह्यरूप को दिङ्नाग ने देखा और उसका चित्र अपने ग्रं[illegible] पर बना डाला परन्तु उसमें वह आदर्श हिन्दू नारी का हृदय न

ा सका। उसकी सीता के भी फीके मुख मण्डल पर शिथिल
लक विखर रहे हैं, वह भी अकारण परित्याग करने वाले राम
ही दीर्घ विरह में घुली जारही है किन्तु राम समझते हैं कि
ाता उनसे रूठ सकती है तभी तो वह इतने दिनों बाद दीखने
र भी उन्हें छोड़कर अभिमान से कहीं चली जारही हैं। यहाँ
ा हृदयों की अभिन्नता नहीं है। वे अब भी एक दूसरे से अज्ञात
, तथापि इस विरह वर्णन में वेदना भरी हुई है जो सहृदयों के
दयों को विदीर्ण कर देती है। दिङ्नाग का और वाल्मीकि का राम
क ही है। वह बड़ा कठोर कर्त्तव्यपालक, अपनी भूल को कभी
स्वीकार करने वाला, हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क से अधिक
रित होने वाला है। उसे दुष्यन्त की तरह अपने अत्याचार पर
आत्ताप नहीं। वह अपने किये सीता निर्वासन को तब भी ठीक
ी समझता है जब वह अन्त में सीता को स्वीकार कर रहा
। भवभूति ने सीता का जो चित्र खींचा है वह समस्त संस्कृत
ाहित्य में अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता। उसके कपोल भी
ीले तथा दुबले हो गये हैं उनमें लावण्य नहीं रहा। उनपर भी
शिथिल अलकें छुट पड़ी हैं। इकट्ठे करके बांधे हुए बाल कमर
र हिल रहे हैं। वह मानों शरीर धारण किये हुए करुणरस
अथवा मूर्त्तिमती साक्षात विरहव्यथा ही बनी हुई है। विरहिणी
सीता के मुख के सम्बन्ध में दो विशेषण देकर कवि ने पाठक

की कल्पना शक्ति को जागृत कर दिया और करुणरस की मूर्ति तथा शरीर धारिणी विरहव्यथा का चित्र कविमंडल में नानाप्रकार का बना देने के लिये उसे स्वतन्त्र छोड़ दिया। यही तो बिन्दु में सिन्धु का दर्शन कराना है। विषय बहुत बढ़ता जाता है, इस लिये विवश होकर हम यहीं समाप्त करते हैं।

कुन्दमाला तथा उत्तर रामचरित

संस्कृत साहित्य में भवभूति-कृत उत्तररामचरित का बहुत ऊँचा स्थान है। कालिदास के जगत्प्रसिद्ध शाकुन्तल को छोड़, कोई नाटक इस से टक्कर नहीं ले सकता। इसमें भवभूति ने अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। यह करुण रस का अद्वितीय नाटक है। उत्तररामचरित को पढ़कर वस्तुतः ही 'पत्थर भी रोने लगते हैं और वज्र का भी हृदय टूक टूक हो जाता है'। 'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयं' यह उक्ति मानो अपनी कविता के सम्बन्ध में ही भवभूति के मुख से निकली थी। इस उत्तररामचरित के आधार पर जो गौरव भवभूति को आज तक मिलता रहा है यद्यपि वह उस का वस्तुतः अधिकारी है तथापि 'कुन्दमाला' के नवीन आविर्भाव ने भी रसिकों के अन्तःकरण को उत्तरचरित की अपेक्षा कुछ कम आह्लादित नहीं किया। उत्तरचरित को पढ़ते समय

एक प्रश्न हमारे हृदय में सदा उठा करता था और उत्तर न सूझता था। सीता-निर्वासन का प्रसङ्ग स्वभाव से ही अत्यन्त करुणोत्पादक है। इतने बड़े महाराज की राजरानी भ्रमण के लिये खुशी खुशी बन आती है। उसका पति उसकी सब इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये उत्सुक रहता है इसका उसे अभिमान है, किन्तु लक्ष्मण के एक शब्द—नहीं नहीं वज्राघात से उसका सब अभिमान क्षणभर में चकनाचूर होजाता है। रघुवंश के चतुर्दश सर्ग में यह सारा प्रकरण अत्यन्त पढ़ने योग्य है। हमें आश्चर्य था कि भवभूति ने करुणरस का परिपाक करने के लिये ऐसे अद्वितीय प्रसङ्ग को क्यों अछूता छोड़ दिया। अब कुन्दमाला को पढ़कर हमारी यह ग्रन्थी स्वयं ही सुलझ गई। दिङ्नाग ने इस दृश्य को ऐसी खूबी से वर्णन किया है कि भवभूति को उससे कुछ अधिक कह सकने का साहस ही न हुआ। उत्तरचरित के तीसरे अङ्क में छायासीता की रचना की गई है। भवभूति ने इस छायासीता से क्या प्रयोजन सिद्ध किया है यह यहां लिखना सम्भवतः अप्रासंगिक होगा अतः इस विषय को हम भविष्य के लिये सुरक्षित रखते हैं किन्तु यहां यह अवश्य कह देना चाहते हैं कि उत्तरचरित में वर्णित छाया सीता भवभूति की अपनी सूझ न होकर दिङ्नाग से याचित है। उत्तर-

चरित के सातवें अङ्क में नाटकान्तर्गत नाटक भी कुन्दमाला के छठे अङ्क का परिमार्जित रूपमात्र है । भवभूति की वन देवता वासन्ती दिङ्नाग की वनदेवता मायावती की ही प्रतिनिधि है। जिस के द्वार पर भवभूति जैसा वश्यवाक् कवि भी भिक्षुक बन कर खड़ा है उसकी महिमा का तो कहना ही क्या ? हम एक दो उदाहरण ही इस सम्बन्ध में दे कर इस विषय को समाप्त कर देना चाहते है । उत्तरचरित के तीसरे अङ्क में—अपने निर्वासन के १२ वर्ष पश्चात् सीता ने अकस्मात् श्रीराम के दर्शने किये हैं और अपनी संगिनी तमसा से कहा है कि हे भगवती! क्या आप जान सकती हैं कि आज इस समय मेरे हृदय की क्या दशा हो रही है ? तमसा ने दुनिया खूब देखी है वह सीता को पुत्री की तरह मानती है । उसका उत्तर सुनिये—

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्
वियोगे दीर्वेऽस्मिन् झटिति घटनात्स्तम्भितमिव ।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयित करुणैर्गाढ करुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव ॥ उत्तर० ३ ।

सीता को वन में अकेली छोड़ कर लक्ष्मण लौट गया। उ आशा थी कि शीघ्र ही राम को अपने किये पर पश्चात्ताप होग उस पर भी सीता का अन्तिम सन्देश सुनकर तो उनके धैर्य

बांध अवश्य टूट जायेगा संभवतः वशिष्ठ कौशल्यादि वृद्ध जन भी उन्हें समझाएंगे और वे शीघ्र ही सीता को वन से वापिस बुलालेंगे। इसी आशा से उसने सीता का सन्देश उन्हें सुनाया। रघुवंश में लिखा है—

अपि प्रभुः सानुशयोऽधुना स्यात् किमुत्सुकः शक्रजितोऽपि हन्ता।
शशंस सीतापरिदेवनान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय ॥

रघु० १४।

जब लक्ष्मण के हृदय की यह दशा थी तो स्वयं सीता की तो बात ही क्या कहनी ? वह बेचारी प्रतिदिन एकान्त में बैठकर अयोध्या के मार्ग की ओर एकटक दृष्टि लगाये स्वयं राम अथवा लक्ष्मण या किसी राजदूत की ही बाट जोहा करती होगी। सूर्यास्त हो जाने पर बाह्य संसार की तरह उसका अन्तःकरण भी नैराश्यान्धकार से घिरा जाता होगा और अगले दिन प्रकाश की प्रथम रेखा से कमलिनियों के साथ उसकी हृदयकलिका भी खिल उठती होगी। पहले कुछ दिनों उसने घर के ही बन्धुओं द्वारा राम को समझाये जाने की कल्पना की होगी। किन्तु किसी दूत के न आने पर सोचा होगा कि पराये घर (सुसराल) में उस दुखिया के दुःख में दुखी होने की किसे पड़ी। वे सब तो राम के दूसरे विवाह की चिन्ता कर रहे होंगे इत्यादि। फिर उसने मिथिला की ओर आशा लगाई होगी कि अब तक तो मेरे निर्वासन का

वियोग में अकस्मात् संयोग हो जाने के कारण उसका हृदय स्तब्ध हो गया। वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गई, उसके मस्तिष्क ने सोचना छोड़ दिया। उसे हलकी-सी मूर्छा आ गई। वह खड़ी रह गई। स्तम्भ होने से हृदय सरोवर की उथल पुथल शान्त हो गई, गाद नीचे बैठ गई, स्वाभाविक सुजनता के कारण अन्तः-करण निर्मल हो गया। अब उसे सूझा कि उसे निकाल कर स्वयं राम भी सुखी नहीं हैं। उनका मुख सूख गया है शरीर में

भावों की समानता ध्यान देने योग्य है—

उत्तर चरित में "सीता—अहो ! जलभरभरितमेघमन्थर-स्तनितगंभीरमांसलः कुतोनु भारतीनिर्घोषो भ्रियमाण-कर्णविवरामपि मां मन्दभागिनीं झटित्युत्सुकापयति। स्वरसंयोगेन प्रत्यभिजानामि ननु आर्यपुत्रेणैवैतत् व्याहृतमिति।"

उत्तर० अङ्क

कुन्दमाला में "सीता—को नु खल्वेष सजलजलदस्तनितगंभीरेण स्वरविशेषेण अत्यन्तदुःखभाजनमपि मे शरीरं रोमांचयति। निरूपयामि तावत् क एष इति। अथवा न युक्तं मम अज्ञात्वा परमार्थसंस्थानं दृष्टिं विसर्जयितुम्। किमत्र ज्ञातव्यम्? नावनाहयति मे शरीरं परपुरुषशङ्को रोमांचमहर्षेण।"

कुन्दमाला ३ अङ्क।

दाम्पत्य प्रेम ने आकर उसके हृदय को द्रवित—पानी पानी—कर दिया। राम के हृदय से उसकी भिन्नता न रही। भवभूति ने सीता के हृदय का यह चित्र तमसा द्वारा खिचवाया है। सहृदयता की पराकाष्ठा है। किन्तु इस चित्र को बनाने में भी भवभूति दिङ्नाग का ऋणी है। देखिये—

"सीता—……ओहो! देख लिया—इससे प्रसन्नता है, इसी ने तो मुझे सदा के लिये निकाल दिया—इससे क्रोध है, यह कितना दुबला होगया है? इससे व्याकुलता है, निठुर है—इससे अभिमान है……आर्यपुत्र के इस एक दर्शन से मेरे हृदय में न मालूम कैसे कैसे विचार उठ रहे हैं?

और एक उदाहरण लीजिये—

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपिहेतु-
न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः॥ उत्तर० ६-१२।

भवभूति के इस श्लोक को पढ़ते ही दिङ्नाग का निम्नलिखित

सौलं चेतसि [illegible] चलित्वनाम्नि मे
तद्दृश [illegible] विरोधिन्यपि।

[illegible]

पत्र आंखों के आगे घूमने लगता है। पिता पुत्र की आ
की आकृति में प्रयाप्त सादृश्य है—

आपातमात्रेण कयाऽपि युक्त्या सम्बन्धिनः सम्बन्धि
विमृश्य किं दोषगुणानभिज्ञश्चन्द्रोदये द्योतति चन्द्र

कुन्द०

सीता के शब्दों में लव कुश का वर्णन भी देखि
में देखिये—

उत्तर रामचरित में "सीता—किंवा मया प्रसूत्वा,
मम पुत्रकयोरीषद्विरलधवलदशनकुड्मलोज्ज्वलं, अनुबद्ध
कली विहसितं, नित्योज्ज्वलं मुखपुण्डरीकयुगलं न परि
मार्यपुत्रेण।" उत्तर० ३ अङ्क।

कुन्दमाला में "सीता—यथा यथा द्वौ दारकावीषत्स्तु
नांकुरकोमलेन, वदनेन मम मुखमालोकयन्तौ प्रहसत,
कोमलेनालापेन तादृशं शब्दापयतः, तथा जानामि तत्
निमज्जामीति।" कुन्द० २ अङ्क।

लव कुश को देखते ही उनमें रामचन्द्र जी की स्वभा
पुत्रबुद्धि उत्पन्न हो जाना—यह घटना भी इन दोनों ना
की गई है कि एक दूसरे की बिम्ब प्र

इस प्रकार के उदाहरणों की कमी नहीं, किन्तु विस्तार भीरुता से यहीं विराम करना पड़ता है। इसी प्रसङ्ग में हम वाल्मीकि रामायण, कुन्दमाला तथा उत्तर चरित के कुछ उद्धरणों से यह प्रमाणित करना चाहते थे कि कुन्दमाला रामायण पर अवलम्बित है तथा उत्तर चरित कुन्दमाला का संशोधित रूप है और उससे अर्वाचीन है किन्तु इस समय अवसर न होने के कारण इस विषय को भविष्य के लिये छोड़ते हैं।

सीता निर्वासन

कुन्दमाला की प्रथम मुख्य घटना राम कृत सीता-निर्वासन है। हम देखते हैं कि पुराने सारे साहित्य में राम के इस काम का समर्थन किसी भी लेखक ने नहीं किया। मनुष्य समाज के लिखित इतिहास में शायद यह पहला अत्याचार है, जो पुरुष जाति ने प्रबल होकर स्त्री जाति पर किया है। सभी न्यायप्रिय कवि अपने काव्य नाटकादि लिख लिख कर और उनमें सीता राम का पुनर्मिलन वर्णन करके इस कलङ्क को पुरुष के मस्तक से पोंछ देने का भरसक यत्न करते आये हैं, किन्तु वह चन्द्रमा के कलङ्क की तरह ही शायद सदा के लिये स्थिर हो गया ... जकल प्रजा-तन्त्रवाद (प्रजा के बहुपक्षानुसार शासन का ... बोलबाला है। इस लिये शायद कोई राजनीतिज्ञ म... को पेश

इस प्रकार के उदाहरणों की कमी नहीं, किन्तु विस्तार भीरुता से यहीं विराम करना पड़ता है। इसी प्रसङ्ग में हम वाल्मीकि रामायण, कुन्दमाला तथा उत्तर चरित के कुछ उद्धरणों से यह प्रमाणित करना चाहते थे कि कुन्दमाला रामायण पर अवलम्बित है तथा उत्तर चरित कुन्दमाला का संशोधित रूप है और उससे अर्वाचीन है किन्तु इस समय अवसर न होने के कारण इस विषय को भविष्य के लिये छोड़ते हैं।

सीता निर्वासन

कुन्दमाला की प्रथम मुख्य घटना राम कृत सीता-निर्वासन है। हम देखते हैं कि पुराने सारे साहित्य में राम के इस काम का समर्थन किसी भी लेखक ने नहीं किया। मनुष्य समाज के लिखित इतिहास में शायद यह पहला अत्याचार है, जो पुरुष जाति ने प्रबल होकर स्त्री जाति पर किया है। सभी न्यायप्रिय कवि अपने काव्य नाटकादि लिख लिख कर और उनमें सीता राम का पुनर्मिलन वर्णन करके इस कलङ्क को पुरुष के मस्तक से पोंछ देने का भरसक यत्न करते आये हैं, किन्तु वह चन्द्रमा के कलङ्क की तरह ही शायद सदा के लिये स्थिर हो गया है। आजकल प्रजा-तन्त्रवाद (प्रजा के बहुपक्षानुसार शासन व्यवस्था) का बोलबाला है, इस लिये शायद कोई राजनीतिज्ञ महाशय इस घटना को पेश

सकते हैं। जादू वह, जो सिर पर चढ़ कर बोले। भवभूति ने राम ही के मुख से उनके कार्य की निन्दा किस कौशल से कराई है—"हे भगवन्तः पौरजानपदाः!—

> न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत-
> स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता।
> चिर परिचितास्ते ते भावास्तथा व्यथयन्तिमा-
> मिदमशरणैरद्याऽस्माभिः प्रसीदत रुद्यते" ॥

अर्थात् 'हे नागरिक भद्र पुरुषो! तुम्हें यह पसन्द न था कि देवी सीता घर में रहें तो मैंने तुम्हें भगवान् की तरह मान कर, तुम्हारी इच्छा को अपनी इच्छा बना कर तृण की तरह उन्हें वन में फेंक दिया और तुम्हारे प्रति हृदय से भी विश्वास-घात न करने के लिये मैंने उन्हें हृदय में भी स्थान न दिया। किन्तु आज उन सब पुरानी स्मृतियों ने मिल मुझे असहाय अवस्था में आकर घेर लिया है। मैं विवश हो कर आज अपनी, निरपराध दण्ड भोगने वाली प्राणप्यारी के लिये रो उठा हूँ। मेरे इस कसूर को माफ करना।' ओह! कैसी मार्मिक वेदना है! इस छोटे से जीवन में संयोग क्षणिक तथा वियोग शाश्वत है। यदि वह क्षणिक संयोग भी सकुशल न निभ सके तो इससे बढ़ कर दौर्भाग्य क्या होगा? अस्तु, हमने देख

होजावे—इसका उन्हें बड़ा भारी भय है। उन्होंने प्रजा की आंखें खोल दीं कि किसी का भी आचार सम्बन्धी अपराध क्षमा नहीं हो सकेगा।

राजनीति सम्बन्धी कारण—भवभूति ने उत्तर चरित में इस घटना के राजनीतिक कारण के रूप में व्याख्या करने की चेष्टा भी की है। नाटक के प्रारम्भ में ही अष्टावक्र ने वशिष्ठ जी का सन्देश(१) श्रीराम को सुनाया है कि 'हम जामाता (ऋष्यश्रृंग) के यज्ञ में रुक रहे हैं, तुम अभी अनुभवशून्य बालक ही हो, राज्यासन पर अभी नये ही आरूढ़ हुए हो—शासन के हथकण्डों को नहीं समझते। प्रजा पुराने राजा से तो प्रेम करने लगती है, वह उसकी भूलों को भी क्षमा कर देती है, किन्तु तुम अभी नये ही हो। ऐसे समय बहुत से स्वार्थी लोग अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये जाल फैलाया करते हैं जिसका अनुभव तुम्हें अपने पहिले अभिषेक की तैयारी के समय प्राप्त हो चुका है। नये राजा को पदच्युत(२) कर सकना बड़ा सरल होता है इसलिये ऐसी दशा

---

(१) जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरंजने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः॥
उत्तर० १-११।

(२) अचिराधिष्ठितराज्य शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात्।

में शासन की सफलता का एक मात्र सूत्र 'प्रजानुरंजन, है इसे गांठ बांध लो। ऐसा न हो कि तुम्हारे अकारण ही गुप्त शत्रु किसी प्रश्न को खड़ा करके प्रजा में या तुम्हारे राज कर्मचारियों में ही दो दल बना डालें। राज कर्मचारियों में पड़ी थोड़ी-सी भी फूट(३) राजा का सर्वनाश कर डालती है। ऐसे समय में दमन करने से भी विद्रोहाग्नि धीरे धीरे सुलगती हुई कभी कभी एकदम भड़क कर काबू से बाहर हो जाती है, इसलिये कोई इस प्रकार का मौका शत्रुओं को न देना चाहिये। मालूम होता है कि राज-कर्मचारियों में एक दल रामविरोधी था। अच्छे से अच्छे आद-मियों के भी शत्रु हुआ ही करते हैं। उस दल ने सीता-अपवाद को आड़ बनाकर यह षड्यन्त्र रचा। वे समझते थे कि राम खूब जानते हैं कि सीता निर्दोष है, वे उसे प्रेम भी बहुत करते हैं, उन्हें रावण-विजय से अपने बाहुबल का भरोसा भी पूरा है, इसलिये वे सीता का परित्याग कभी न करेंगे। उधर हमारे आचारहानि-सम्बन्धी आन्दोलन मे बहुत से भोले भाले

नव संरोहन शिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम्॥ मालविकाग्निमित्र।

३) अणुरप्युपहन्ति विग्रहः प्रभुमन्तः प्रकृतिप्रकोपजः।
सकलं हि हिनस्ति भूधरं तरु शाखान्तनिघर्षजोऽनलः॥

किरात०।

धर्मपरायण ऋषिमुनि महात्माओं की सहानुभूति होजाना बिल्कुल स्वाभाविक ही है। धार्मिक पक्ष की सहानुभूति होने से धीरे धीरे प्रजा भी हमारे साथ हो ही जावेगी और इस प्रकार हम अपने उद्देश्य में सफल हो सकेंगे 'महाजन-विरोधेन कुंजरः प्रलयंगतः'। किन्तु श्रीराम ने वशिष्ठ जी के उपदेश का अनुसरण कर सीता को निकाल दिया और उन विरोधियों की सारी चाल विफल करदी। वे कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि घटनाचक्र इस प्रकार घूम जावेगा। उन्होंने अपने हथियार डाल दिये। श्रीराम को इस विषय में कृतकार्यता प्राप्त हुई, किन्तु बहुत बड़े वैयक्तिक त्याग के बदले में।

ऊपर लिखे इन दोनों रूपों में हमने इस घटना को समझाने का यत्न किया है, किन्तु साथ ही हम यह भी अवश्य कहेंगे कि इन दोनों कारणों के रहते भी सीता के प्रति किया गया अन्याय न्याय नहीं माना जासकता।

गुरुकुल कांगड़ी ⎫ —वागीश्वर विद्यालङ्कार
[illegible] ⎭

नाटक के पात्र

राम—कथानायक, अयोध्यापति।

लक्ष्मण—राम का छोटा भाई, सीता का देवर।

सुमन्त्र—सारथि।

वाल्मीकि, काश्यप, बादरायण, कण्व — आश्रमवासी ऋषि।

कौशिक—राम मित्र विदूषक।

कंचुकी—राम के अन्तःपुर का अधिकारी।

कुश और लव—राम के दो पुत्र।

सीता—राम की पत्नी, कुश लव की माता।

मायावती—सीता की दण्डकारण्य सहचरी वन देवी।

वेदवती, यज्ञवती — वाल्मीकि के आश्रम की मुनिकन्यायें।

तीन महादेवियां—कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा।

तीन वधुएं—माण्डवी=भरत की पत्नी। उर्मिला=लक्ष्मण की पत्नी। श्रुतकीर्त्ति=शत्रुघ्न की पत्नी।

पृथ्वी—पृथिवी की अधिष्ठात्री देवी।

पृथ्वी की सहचारिणी—अन्य देवियां।

तिलोत्तमा—स्वर्ग की अप्सरा।

नैमिषारण्य—गोमती के किनारे तपोवन।

वाल्मीकि का आश्रम—गंगा के किनारे।

कुन्दमाला

कुन्दमाला

प्रथम अङ्क

सुरपति-सिर-मन्दार-स्रक्-मधु-पायी सुख मूल ।
पी ले विघ्न-पयोधि को श्री गणपति-पद-धूल ॥१॥
उत्कट तपोमय अग्नि की मानो उठी ज्वालावली,
गङ्गा-तरङ्ग-सुभङ्ग-गृह वल्मीकली शोभा-स्थली ।
कोमल-विसांकुर-चारु-विधु को स्थापि-सन्ध्याकाल सी,
शिव की जटा सुख दे तुम्हें नव-भानु के भा-जाल सी ॥२॥

सूत्रधार—सभा का आदेश है कि अरारालपुर-निवासी आदरणीय कवि श्री दिङ्नाग ने 'कुन्दमाला' नामक जो नाटक बनाया है मैं आज उसे खेलूँ। तो अभी चलूं इस अभिनय में सहायक आर्या को बुलाकर रङ्गशाला में उनके

(नेपथ्य में)

[illegible]

सूत्रधार—[illegible] बुलाने से मेरी सहायता

सी कर रहा है । (देख कर) हाय हाय कैसा
कारुणिक दृश्य है ?

वन से हर कर क्योंकि लेगया अपने रावण
छोड़ी पति ने अतः लोक निन्दा के कारण।
इस, निर्वासित, गर्भ-भार से थकित प्रतिक्षण
सीता को वन लिये जा रहा है वह लक्ष्मण ॥३॥

(सूत्रधार जाता है)

स्थापना समाप्त

(रथ पर सवार सीता, लक्ष्मण और सारथि का प्रवेश)

लक्ष्मण—आर्ये ! इधर आइये इधर । घने वृक्ष और लता-
जालों से गुँथे हुए गङ्गातट के इन वनों में रथ आगे
नहीं बढ़ सकता, आप यहीं उतर लीजिये ।

सीता—वत्स लक्ष्मण ! घोड़े इतनी तेज़ी पर हैं कि मैं थरथर
काँप रही हूँ । खड़ी भी नहीं हो सकती, उतरना तो
दूर रहा ।

लक्ष्मण— सुमन्त्र, घोड़ों को ज़ोर से रोको ।

सुमन्त्र— गाना सुनने के रसिया ये घोड़े रोके भी नहीं
रुकते । देखिये

कहीं सुनाई पड़ने समीप ही आकृष्ट हो कोमल हंसनाद से ।
न मान घोड़े कुछ बागडोर को चले अहो चंचल और वेग से ॥४॥

लक्ष्मण—सुमन्त्र, घोड़े बहुत ज़ोर कर रहे हैं। ऊँच नीच कुछ भी न देख ये रथ को गंगा की ढाल में गिरा देंगे। इन्हें अच्छी तरह रोको।

सुमन्त्र—(लगाम खींचता है)

लक्ष्मण—भाभी उतरो, रथ थम गया।

सीता—(उतरकर इधर-उधर टहलती है)

लक्ष्मण—बहुत बड़ी मंजिल तय करके घोड़े थक गये हैं। सुमन्त्र, इन्हें आराम कराओ।

सुमन्त्र—जो आज्ञा महाराज! (रथ पर सवार हो निकल जाता है)

लक्ष्मण—भाईजी-अथवा महाराज ने मुझे आज्ञा दी है कि 'हे लक्ष्मण! रावण के घर रहने के कारण तुम्हारी भाभी के चरित्र में शङ्का करते हुए प्रजाजन मुंह आई हांक रहे हैं। मैं एक सीता के लिये इक्ष्वाकु के निर्मल कुल को कभी कलङ्कित न होने दूँगा। तुम्हारी भाभी ने दोहद के रूप में भागीरथी के दर्शनों की इच्छा प्रकट की ही है। तुम सुमन्त्र से रथ जुतवा इस गङ्गा-स्नान के बहाने ही उन्हें किसी वन में छोड़ आओ।' विश्वास के कारण बेखटके साथ आई भाभी

को मैं जंगल में ऐसे लारहा हूँ जैसे प
हिरनी को कोई कसाईखाने ले जाए।

सीता—वत्स लक्ष्मण, पूरे दिनों के गर्भ-भार को ड
से थककर मेरे पैर अब आगे नहीं बढ़ते। तो श्र
जाकर देखो कि गङ्गा कितनी दूर है ?

लक्ष्मण—अब दूर कहाँ ? घबराइये मत । ये आ पहुँचे
देखिये—

ले लेकर मकरन्द-गन्ध अरविन्द-वनों का,
संग लिये संगीत मञ्जु कलहंस-गणों का।
शीत-तरङ्गोच्छलित स्वच्छ छींटे छितराती।
करने तुम्हें प्रसन्न पवन गङ्गा की आती ॥ ५ ॥

सीता—(वायु-स्पर्श का अभिनय करती है) माता के क
स्पर्श के समान सुखद, शीतल गङ्गा के झोकों के
लगने से थकान की तरह पाप भी कट गये। त
भी गर्भकालिक चाह मुझे गंगास्नान के लिये प्रेरित क
रही है। इस खड़े किनारे से उतरने के लिये मुझ
थकी मांदी को मार्ग दिखलाओ।

—[हाथ से दिखलाकर] मनुष्यों का आना जान
बिलकुल न होने से ये किनारे बड़े ही बेढब हैं। इस
लिये पैरों के पंजे खूब जमाकर—

धान्य-लता वह पकड़ हाथ में अपने बांए,
रखकर दांया हाथ और घुटनें पर दांए।
कदम कदम पर मेरे अपना कदम जमाएं।
धीरे धीरे आप धैर्य धर आयें! आएं ॥६॥

सीता—(इसी प्रकार उतर कर) वत्स, मैं तो बिलकुल हार गई। ठहरो, इस वृक्ष की छाया में बैठकर घड़ी भर सस्ता लूं।

लक्ष्मण—आपकी जैसी इच्छा।

(सीता बैठकर विश्राम करती है)

लक्ष्मण—किस्मत के धनियों को कहीं भी किसी बात की कमी नहीं। तभी तो—

तरल तरङ्ग समीर सुशीतल चला रहे हैं।
कहीं गीत कलहंस मनोहर सुना रहे हैं।
छाया सुख दे रही गले मिलती सी आली
सुने वन भी आप दीखतीं परिजन वाली ॥७॥

सीता—ठीक कहते हो लक्ष्मण, मैं यहां भी दास-दासियों से घिरी हुई सी सुखी हूं।

लक्ष्मण- (मन ही मन) अभी आराम कर चुकी और सुख से बैठी हैं यही समय है कि मैं अपना कर्त्तव्य पालन करूं। (प्रकट) (एकाएक सीता के पैरों मे

गिरकर) आपके प्रयास दुःख में सदा का साथी कुलत्यागी लक्ष्मण प्रार्थना करता है कि आप अपने हृदय को दृढ़ कर लीजिये।

सीता—(घबरा कर) मेरे प्राणनाथ कुशल से तो हैं ?

लक्ष्मण—(वन की ओर निर्देश कर) इस दशा में कुशल कैसा

सीता—माता कैकेयी ने फिर से वनवास दे दिया है क्या ?

लक्ष्मण—वनवास तो दिया है पर माता ने नहीं।

सीता—तो, किसने ?

लक्ष्मण—भाई जी ने।

सीता—क्यों ?

लक्ष्मण—(आंसू रोककर)

उनकी आज्ञा—इसलिये कहता हूँ—तत्काल—
वाणी देती हृदय में एक गांठ सी डाल ॥ ८ ॥

सीता—तो क्या वनवास मुझे दिया है ?

लक्ष्मण—केवल आपको ही नहीं अपने आपको भी।

सीता यह कैसे ?

लक्ष्मण—यज्ञाग्नि थी स्थापित, मित्र लोग
पाते, जहां थे सब सौख्य-भोग।
प्रासाद वे चारु बिना-तुम्हारे
होंगे, उन्हें भी वन-तुल्य सारे ॥ ९ ॥

सीता—वत्स, साफ़ साफ़ कहो। आज मेरा वनवास उनका वनवास कैसे है?

लक्ष्मण—और क्या कहूँ मैं अभागा?

वे चारित्र-धनी चुके तुम से नाता तोड़।
आना मुझ को भी तुम्हें अब इस वन में छोड़ ॥ १० ॥

सीता—हा तात! आर्य्य! अवधेश्वर! मेरे लिये तो आप आज मरे हैं। (मूर्छित हो जाती है)

लक्ष्मण—(घबरा कर) अनभ्र वज्रपात तुल्य अपने परित्याग के समाचार को सुनते ही, दीखता है कि भाभी मर गईं। (देखकर) सौभाग्य से सांस तो चल रहा है। इन्हें होश में कैसे लाऊँ? (दुःखी होता है) अहो आश्चर्य है :—

हुई गङ्गा की इन शीतल समीरों की मिहरबानी।
जगाई भाग्य से मेरी उठी फिर जी महारानी ॥ ११ ॥

सीता—वत्स लक्ष्मण! चले गये क्या?

लक्ष्मण—आज्ञा कीजिये। यह हूँ मैं अभागा।

सीता—किस दोष से निकाला है मुझे?

लक्ष्मण—आप और दोष!

सीता—ओह! मैं कैसी अभागिन हूं! जो बिना ही दोष मुझे निकाला है! मेरे लिये कोई सन्देश है क्या?

है। मुझ—सीता के विषय में भी ऐसा सन्देह किया जाता है? संसार में स्त्री कोई न बने। यूं छोड़ी गई।। हां छोड़ी गई। तो प्राणनाथ से छोड़ी हुई मैं भी क्या इन प्राणों को छोड़ दूं? उस निर्दय की उसही जैसी सन्तान की रक्षा करनी होगी, क्या इसीलिये कलङ्क-रूपी कण्टक से दूभर इस जीवन को धारण किये रहूं?

लक्ष्मण—कृपा है आपकी। (उठकर प्रणाम करता है) भाईजी ने यह भी कहा है—

सीता—हैं, क्या कहा होगा?

लक्ष्मण—"गृहदेवते! बसी मन-मन्दिर सुन्दर मूर्त्ति तुम्हारी,
शयन-सहचरी सखी स्वप्नें भी तुम ही हो प्यारी।
ले सकती आसन न तुम्हारा कोई कभी सपत्नी,
मूर्ति तुम्हारी ही यज्ञों में होगी मेरी पत्नी॥ १४॥

सीता—यह सन्देश भेजकर आर्यपुत्र ने मेरा परित्याग-दुःख सर्वथा दूर कर दिया। व्यभिचारिणी स्त्री पति को इतनी वेदना नहीं पहुंचाती, जितनी अन्याऽऽसक्त पति पत्नी को।

लक्ष्मण—सन्देश के उत्तर में आपने कुछ कहना है?

सीता—किसे?

सहसा निकाल देना आपके लिये उचित न था ।

लक्ष्मण—आपने अपना सन्देश कह लिया । मैं तो समझता हूँ—

उतरीं उनके हृदय से—यह होता है ज्ञात ।

आप निकालीं देश से, घर की तो क्या बात ॥ १५ ॥

सीता—इतना और कहना—वह तपोवननिवासिनी हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती है कि, यदि मुझे किसी गुण से नहीं तो चिर-परिचित, अनाथ अथवा केवल सीतापन के नाते ही कभी कभी याद कर लिया करें ।

लक्ष्मण—जले हुए पर नमक सा; सुन कर यह सन्देश ।

महाराज के हृदय को होगा दुःसह क्लेश ॥ १६ ॥

सीता—इतने बड़े राज्य में भी दुःख में उनकी सहायता करने वाला कौन है ? अब मेरे पीछे अकेले तुम्हें ही उनकी चिन्ता करनी होगी । देखना उनके स्वास्थ्य का बहुत बहुत ध्यान रखना ।

लक्ष्मण—यह बात आपकी महानुभावता के अनुरूप ही है ।

सीता—वत्स लक्ष्मण ! रघुकुल की राजधानी अयोध्या माता को मेरी ओर से प्रणाम करना । स्वर्गीय बड़े महाराज की प्रतिमा के चरण छूना । मेरी पूजनीय सासों की आज्ञा का पालन करना । मोट

बोलने वाली मेरी प्यारी देवरानियों और सखियों को ढारस बंधाना । मुझ अभागिनी को सदा ध्यान रखना । (रोती है)

लक्ष्मण—(भरे हृदय और रुंधे गले से)

इन हत्यारे हाथों वन में भाभी को छुड़वाने
इन कुत्सित कानों में उनका क्रन्दन दीन सुनाने ।
मुझे जगाकर—सुख से सोते को लङ्का के रण में
जीवन-दाता पवन-पुत्र भी रिपु दिखते इस क्षण में ॥ १७ ॥

(चारों ओर देखकर)

हरी घास भी छोड़ हरिणगण मातम कहीं मनाते,
शोक-विकल कुल कलहंसों के कहीं विलाप सुनाते ।
देवी की दुःख दशा देखकर मोर न नृत्य रचाते,
पत्थर रहे पसीज, नरों के हृदय दया न दिखाते ॥ १८ ॥

सीता—वत्स लक्ष्मण ? दिन ढल चुका है । यहां दूर २ तक कहीं आदमी का पता नहीं । पक्षियों ने वृक्षों पर बसेरा लिया । जंगली जानवर घूमने लगे । अब यहां अधिक रुकना तुम्हें उचित नहीं ।

लक्ष्मण—(हाथ जोड़ कर) यह लक्ष्मण की सब से अन्तिम प्रणामाञ्जलि है, इसे सावधान हो स्वीकार कीजिये ।

सीता—मैं सदा सावधान हूं ।

लक्ष्मण—आप से प्रार्थना है—

स्वामी, सखी, स्वजन, सुख घरके कभी स्मरण कर मन में
धोलें आप न हाय सुपावन इस जीवन से वन में।
सूर्यवंश की विमल-कला को हुई आपने धारण,
है, उत्तम कर्त्तव्य आपका अब तो इसका पालन ॥ १६ ॥

सीता—तुम्हारी बात को मैं कभी नहीं टालूंगी।

लक्ष्मण—यह निवेदन और है—

सीता—वह क्या ?

लक्ष्मण—भाई के आदेश से ला वन में, निर्दोष—
छोड़ रहा हूँ आपको, करें न मुझ पर रोष ॥ २० ॥

सीता—बड़े भाई की आज्ञा पालन कर रहे हो—इस सन्तोष के स्थान में रोष की आशङ्का कैसी ?

लक्ष्मण—(प्रदक्षिणा तथा प्रणाम कर चलता है)

सीता—(रोती है)

लक्ष्मण (दिशाओं को देख कर) हे सब दिक्पालो ! सुनो—
पूज्य महारथ नृप दशरथ की पुत्रवधू सुकुमारी

सीता अहा ! कैसे सुन्दर शब्द सुनाई पड़ रहे हैं ?

लक्ष्मण राम नाम भगवान विष्णु की पत्नी सीता प्यारी।

सीता ऐसे भाग्य मेरे कहाँ

लक्ष्मण पतिगृह से निर्वासित

सीता—(कान मूंद लेती है)

लक्ष्मण— निर्जन जंगल में अलबेली

आई, रक्षा करें आप सब, ये हैं यहां अकेली ॥ २१ ॥

सीता—(गर्भस्थित संतान की ओर निर्देश करती है—रक्षा के लिये)

लक्ष्मण—इनके लिये भगवती भागीरथी से भी प्रार्थना करें—

थक जायें जब ये, तुम गङ्गे ! सुरभि-सना मस्ताना,
लहरों से सुख शीतल, इन पर कोमल अनिल चलाना।
उतरेंगी तुम में ही, होगा जब जब इन्हें नहाना,
धीरे धीरे तब तुम अपना निर्मल नीर बहाना ॥ २२ ॥
रहते हैं इन सघन वनों में मुनिवर जो कि यहां पर,
सब से मेरी एक यही है विनती शीश नवा कर।
पति की त्यागी, दीन, अभागी, स्त्री, देवी कुलनारी—
कुछ समझो—ये सभी तरह हैं करुणा-पात्र तुम्हारी ॥ २३ ॥

ये हाथ जोड़े वन-देवताओ !
मैं मांगता हूं करुणा दिखाओ।
सोती, दुखी और असावधाना—
इन्हें, कभी आप न भूल जाना ॥ २४ ॥
हिंस्र पशुओ ! भाग बस जाओ कहीं,
अब नहीं तुम भूलकर आना इधर।

हो सखी वनवालिनी मृगलोचनी की,
इन्हें मृगियो ! न जाना छोड़ कर ॥ २५ ॥
लोकपालो ! स्वामियो, माँ जाह्नवी !
सखि सरित् ! गिरि ! भाइयो सुनलो कहा ।
ध्यान रखना राजरानी का सदा,
मांगता लक्ष्मण यही बस जारहा ॥ २६ ॥

(प्रस्थान कर जाता है)

सीता—मुझे अकेली छोड़, लक्ष्मण सचमुच ही चला गया क्या ? (देखकर) हाय ! धिक्कार है मुझे । सूर्य छिप गया । लक्ष्मण की आवाज़ भी कहीं सुनाई नहीं पड़ती । हरिण अपने बसेरों में आलिये । पक्षी उड़ गये । जानवर घूम रहे हैं । अन्धेरे ने आंखों में धूल मिला दी । इस भयङ्कर महा वन में मनुष्य का कहीं चिह्न भी नहीं । क्या करूं मैं अभागिनी ? इन बीहड़ वनों में अकेली कहां भटकती फिरूं ? यह बिछोह मेरे किन पापों का फल है ? लक्ष्मण ने नियुक्त वनदेवताएं क्या हुईं ? सूर्यवंश के कुलक्रमागत वशिष्ठ-वाल्मीकि आदि प्रभावशाली महर्षि क्या हुए ? सब ने मुझे छोड़...... (बेहोश हो जाती है)

(वाल्मीकि का प्रवेश)

वाल्मीकि—(घबराहट के साथ)

कर कर सान्ध्यस्नान, सांझ इस गङ्गा-तट से आते
मुनिपुत्रों ने समाचार ये आकर मुझे सुनाये।
भी रो रही यहां भी कोई दीन गर्भिणी बाला
उसे ढूंढने आया हूं मैं यहां व्यथित-मनवाला ॥२७॥

अच्छा, तो ढूंढूं। (ढूंढता है)

सीता—(होश में आकर) यह कौन मुझे छू रहा है!
(सोचकर) नहीं, कोई नहीं। आज्ञापक लक्ष्मण के वचन से मेरा अनुसरण करती हुई भगवती भागीरथी अपनी शीतल तरङ्गों से मुझे अनुगृहीत कर रही है।

वाल्मीकि—आंखों में अंधेरा मिल जाने से कुछ नहीं सूझता। आवाज़ दूं। यह मैं हूं—

सीता—(प्रसन्नता से) क्या लौट आये तुम वत्स लक्ष्मण!

वाल्मीकि—लक्ष्मण नहीं, मैं हूं।

सीता—(घूंघट निकाल कर) ओ! अनर्थ होगया! यह अजनबी कौन होगा? अब इस बला को कैसे टालूं? (सोचकर) यूं सही मैं असहाय अबला हूं।

वाल्मीकि—यह खड़ा होगया मैं। बेटी तू मुझे पराया न समझ। गंगा तट पर सांझ को स्नान

सन्ध्यादि करके लौटे हुए मुनि-कुमारों से तुम्हारा हाल सुनकर मैं तपस्वी, तुम्हें ढूंढ़ने आया हूं। मैं पूछता हूं—

ो धर्म से पाई विजय जिसने समर विकराल में।
,व दे तुम्हें उस राम के भी कौन शासन-काल में ॥२८॥

ीता—इसी पूर्ण चन्द्र से तो मुझ पर यह वज्रपात हुआ है।

ाल्मीकि—तो राम से ही तुम्हें यह दुःख मिला है ?

ीता—और क्या ?

ाल्मीकि—वर्ण और आश्रमों की व्यवस्था रखने वाले राम ने ही तुम्हें निकाला है तो मैं भी तुम से बाज़ आया। भला हो तुम्हारा। मैं जाता हूं। (जाने लगता है)

ीता—प्रार्थना है—

ाल्मीकि—कहो

ीता—रघुपति से निकाली गई हूं इसलिये यदि आप मुझ पर दया नहीं दिखाते तो, मेरे गर्भ में स्थित रघु, नहुष, दिलीप, दशरथ जैसे महापुरुषों की वंशधर सन्तति पर तो दया करके [illegible] रक्षा कीजिये

वाल्मीकि—[लौटकर] यह तो सूर्यवंश से ही अप
सम्बन्ध बतला रही है। तो पूछूं—बेटी! {
महाराज दशरथ की पुत्रवधू हो ?

सीता—यही समझिये।

वाल्मीकि—और विदेहराज जनक की पुत्री ?

सीता—जी।

वाल्मीकि—और सीता ?

सीता—सीता नहीं, भगवन्! एक अभागिनी।

वाल्मीकि—हाय, कैसा सर्वनाश है ? महल से उतार तुम्हें
नीचे क्यों बिठा दिया ?

सीता—(शरमा जाती है)

वाल्मीकि—शरमाती हो। अच्छा, दिव्य चक्षु से देखता
हूं। (ध्यान करके) बेटी! लोकनिन्दा से डरे
हुए राम ने तुम्हें घर से ही निकाला है हृदय
से नहीं। तुम निरपराध हो। मैं तुम्हारा परि-
त्याग नहीं कर सकता। चलो, आश्रम
को चलें।

सीता—आपका परिचय ?

वाल्मीकि—सुनो—सुहृन पुराना मिथिलेश का मैं
सखा अयोध्या-पति का अनन्य।

वाल्मीकि हूं पुत्री ! करो न शङ्का
मानो मुझे भी उनसे अनन्य ॥ २६ ॥

सीता—भगवन् प्रणाम करती हूं ।

वाल्मीकि—वीरप्रसवा होओ और पुनः अपने पति की कृपा-भाजन बनो ।

सीता—संसार आपको वाल्मीकि कहता है पर मुझे तो आप पिता-श्वशुर सब कुछ हैं । मुझे अपने आश्रम में ले चलिये । भगवती भागीरथी ! यदि मेरा प्रसव सुख-पूर्वक हुआ तो प्रतिदिन अत्यन्त सुन्दर कुन्द कुसुमों की माला गूंथ तुम्हें भेंट किया करूंगी ।

वाल्मीकि—रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ है, तुम्हारे लिए विशेषकर, जैसे २ मैं मार्ग दिखाऊं वैसे २ ही आओ—

कुश-कंटक हैं—हलके हलके पैर यहां धर चलना,
नीची है यह डाल—झुको कुछ, बांए गड़ा, सम्हलना ।
दांए ठूंठ, सहारा ले लो, अब है पृथिवी समतल
धोलो इसमें पैर, कमल-सर यह अतिसुन्दर निर्मल ॥ २७ ॥

सीता—(इसी तरह चलती है)

वाल्मीकि (दिखा कर)

पुण्य-क्रिया रघुकुल वालों की पुंसवनादिक सारी,
हम ही सदा किया करते हैं बेटी ! हे ...

वाल्मीकि—[लौटकर] यह तो सूर्यवंश से ही अपना सम्बन्ध बतला रही है। तो पूछूं—बेटी! तुम महाराज दशरथ की पुत्रवधू हो ?

सीता—यही समझिये।

वाल्मीकि—और विदेहराज जनक की पुत्री ?

सीता—जी।

वाल्मीकि—और सीता ?

सीता—सीता नहीं, भगवन्! एक अभागिनी।

वाल्मीकि—हाय, कैसा सर्वनाश है ? महल से उतार तुम्हें नीचे क्यों बिठा दिया ?

सीता—(शरमा जाती है)

वाल्मीकि—शरमाती हो। अच्छा, दिव्य चक्षु से देखता हूं। (ध्यान करके) बेटी! लोकनिन्दा से डरे हुए राम ने तुम्हें घर से ही निकाला है हृदय से नहीं। तुम निरपराध हो। मैं तुम्हारा परि-

वाल्मीकि हूं पुत्री ! करो न शङ्का
मानो मुझे भी उनसे अनन्य ॥ २६ ॥

सीता—भगवन् प्रणाम करती हूं ।

वाल्मीकि—वीरप्रसवा होओ और पुनः अपने पति की कृपा-भाजन बनो ।

सीता—संसार आपको वाल्मीकि कहता है पर मुझे तो आप पिता-श्वशुर सब कुछ हैं । मुझे अपने आश्रम में ले चलिये । भगवती भागीरथी ! यदि मेरा प्रसव सुख-पूर्वक हुआ तो प्रतिदिन अत्यन्त सुन्दर कुन्द कुसुमों की माला गूंथ तुम्हें भेंट किया करूंगी ।

वाल्मीकि—रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ है, तुम्हारे लिए विशेषकर,
जैसे २ मैं मार्ग दिखाऊं वैसे २ ही आओ-
कुश-कंटक हैं हलके हलके पैर यहां धर चलना,
नीची है यह ढाल—झुको कुछ, बांए गड्ढा, सम्हलना
दाएं ठूंठ, सहारा ले लो, अब है पृथ्वी समतल
धो लो इसमें पैर, कमल-सर यह [illegible] निर्मल ।

सीता—(इसी तरह चलती है)

वाल्मीकि—[illegible]

[illegible]
[illegible]

सास आदि की सेवा का सुख वृद्धाओं में पाना,
होंगी सखियां और बहिन ये मुनि-कन्याएं नाना ॥ ३१ ॥

(सब जाते हैं)

प्रथम अंक समाप्त

द्वितीय अङ्क

(दो मुनि-कन्याओं का प्रवेश)

पहली—सखी वेदवती ! बधाइयां । तेरी सहेली सीता के, रामचन्द्र जी जैसे सुन्दर वर्ण वाले दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं ।

वेदवती—अहा ! बड़ी खुशी की बात है ! यह तो बताओ कि उनके नाम क्या २ रक्खे गये हैं ?

पहली—कुलपति जी बड़े को कुश और छोटे को लव कहा करते हैं ।

वेदवती— वे चलने फिरने भी लगे हैं ?

पहली—तू चलने फिरने की ही पूछ रही है

वे मृग-शावक किशोर हैं वन हिरनों से होड़

तापसियों के आनन्द मोदक हैं चित चोर

वेदवती—[illegible]

[illegible]

पहली—[illegible]

[illegible]

दूसरी—महाराज ने यज्ञ की सब सामग्री एकत्र करा चुकी है। अब ऋषि, मुनियों को पत्नी आदि सहित बुलाने के लिए निमन्त्रण भेजे जा रहे हैं।

पहली—हमारे कुलपति जी को भी निमन्त्रित किया गया है?

दूसरी—सुना तो है कि इस वाल्मीकि-आश्रम में भी राम-दूत आया है। अच्छा, तो सीता अब कहां मिलेगी?

पहली—समय कैसे कटे—इस चिन्ता में मग्न यहीं साल वृक्ष की छाया में बैठी है।

(दोनों जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त

(पृथिवी पर बैठी चिन्तातुर सीता का प्रवेश)

सीता—(गहरी सांस लेकर) ओह! स्वभाव से ही निठुर पुरुष-हृदय इतना खोखला हो सकता है! स्तूपों तथा स्मृति-स्तम्भों पर अङ्कित करने योग्य प्रेम वाले दम्पतियों के प्रसङ्ग में स्वर्ग में उमा महेश्वर और पृथिवी-तल पर सीता राम का प्रेम आदर्श है इस लोकोक्ति को सत्य करके भी आज मुझ निरपराधिनी की यह दुर्दशा कर दी है। हाय! किस मुंह से उनकी निन्दा करूं! मेरे प्राणनाथ ने पहिले मेरा इतना आदर बढ़ा फिर केवल एक झूठे अपवाद के कारण आज मुझे कोसों दूर पटक......बिना

कारण......आज मेरा जीवन मेरे लिये ही पूर्णदुःख-मय...अहा! उनके साथ भी चन्द्रोदय देखे थे, कोकिलों के कल आलाप सुने थे, मलयमारुतों के सुखमय स्पर्श अनुभव किये थे। उन्हीं सबको मैं आज अकेली देख, सुन और अनुभव कर रही हूं। क्या इन प्राणों को छोड़ दूं? मुझ जैसी स्त्रियों को यह शोभा नहीं देता। एक दिन मैं अपने प्रियतम की प्यारी थी तो सब मिथिला-निवासियों की दृष्टि मुझ पर उठा करती थी—आज मेरी यह दुर्दशा है। परित्याग दुःख उतना नहीं, जितनी यह लज्जा मुझे मारे डाल रही है। आज मेरी गोद में दो लाल खेल रहे हैं। दोनों अच्छी तरह पल कर बड़े हुए हैं। भगवान् वाल्मीकि सब प्रकार मेरा ध्यान रखते हैं। तो तपोवन-निवास के विरुद्ध इस प्रकार आहें भर २ कर दिन काटना मुझे उचित नहीं। मैंने प्रियसखी वेदवती को अभी तक अपनी पुत्रोत्पत्ति का समाचार नहीं दिया और न उसे इस मंगलोत्सव पर निमन्त्रित ही किया—यह और भी कारण है कि मैं अभी मरना नहीं चाहती।

(वेदवती का प्रवेश)

वेदवती तपोधनों को प्रणाम और अतिथियों का उचित शिष्टाचार तो मैं कर चुकी, अब इधर चलकर

साल की छाया में बैठी प्रिय सखी सीता का अभिनन्दन करूँ (घूम कर और देख कर) गर्मी के महीनों में कुम्हलाई हुई लता की तरह, पीले दुबले अंगोंवाली, महाराज जनक की यह दुलारी मेरे हृदय को मसोसती हुई साल की जड़ में बैठी है। चलूं इसके पास। (पास पहुंच कर) ये लम्बी अलकों से आच्छादित लोचन, यह कातर-दृष्टि, यह चिन्ता निमग्न आकृति, यह नीचे को लटका हुआ मुंह—। इसे बुलाऊं (बुलाती है) सखी वैदेही !

सीता—(चिहुकती हुई देखकर) मैं बड़ी प्रसन्न हूं। प्रिय सखी ! तुम आ मिलीं। स्वागत है तुम्हारा।

वेदवती—कुश लव तो सकुशल हैं ?

सीता—वनवासी जितने हो सकते हैं।

वेदवती—अपनी कहो।

सीता—(वेणी को दिखला कर) मेरा क्या होना है ?

वेदवती—(मन ही मन) यह बेचारी बहुत ही व्याकुल हो रही है। अच्छा, राम के किये अपमान की याद दिलाकर इसके शोक को कम करूँ। (प्रकाश) अय नादान ! वैसे विश्वासघाती और निर्दय के लिये क्यों दिनोंदिन कृष्णपक्ष की चन्द्रकला

की तरह घुली जारही हो ?

सीता—वे निर्दय क्यों ?

वेदवती—तुम्हें छोड़ जो दिया।

सीता—क्या छोड़ दिया है मुझे ?

वेदवती— (हँसकर और उसकी वेणी पर हाथ फेरकर) लोग ऐसा ही कहते हैं। हां, सचमुच तुम्हें छोड़ दिया।

सीता—किन्तु केवल शरीर से, हृदय से नहीं।

वेदवती—तुम्हें पराये हृदय की क्या खबर ?

सीता—उनका हृदय, और सीता के लिये पराया ? यह कैसे ?

वेदवती—ओह ! कैसा अटूट अनुराग है ?

सीता—जिस आर्यपुत्र ने मुझ अधन्या के लिये जगत्प्रसिद्ध सेतुबन्धादि उद्योग किये वे मुझ से विरक्त कैसे हो सकते हैं ?

वेदवती—अपने मुंह मियां मिट्ठू ! अपकारी रावण पर क्रोध तो हो पर सीता पर प्रेम न हो क्षत्रिय-पुत्र के लिये यह भी संभव है

सीता—यह और नहीं देखती हो ?

वेदवती—क्या और ?

सीता—यही।

वेदवती—यही क्या ?

सीता—(शरमा कर) यही कि आज इतने दिन हो चुकने पर भी, सौतिन के निश्वास-पवन से अदूषित उनके हृदय में मैं ही पूजा पा रही हूं।

वेदवती—सखि ! क्यों उतावली हो रही हो । राम अश्वमेध यज्ञ में दीक्षित होने ही को हैं।

सीता—तो क्या ?

वेदवती—यही कि तब यज्ञ में किसी सहधर्मचारिणी का पाणिग्रहण करना ही पड़ेगा।

सीता—आर्यपुत्र के हृदय पर ही मेरा प्रभुत्व है, हाथ पर नहीं।

वेदवती—(मन ही मन) ओह ! कैसा अटूट प्रेम है ? (प्रकाश) सखी ! क्या पुत्रों का मुख देखकर भी तुम्हारा प्रवास-शोक अभी दूर नहीं हुआ ?

सीता—ज्यों ज्यों दवा करती हूं मर्ज़ बढ़ ही रहा है। शोक को दूर करने का उपाय ही उलटा उसे बढ़ाने वाला है।

वेदवती—कैसे ?

सीता—जब ॰ मेरे बच्चे कुछ ॰ निकली दंतुलियों से सुन्दर, अपने मुखड़ों से मुझे निहारते हुए हँस

देते हैं, जब २ वैसी ही मीठी वाणी से उसी तरह बुलाते हैं—मैं उनकी मोहकता में डूब सी जाती हूं । अब तो वे समय के साथ २ बचपन को लांघकर और भी बड़े हो गये इसलिये मुझे और भी अधिक दुःख पहुंचता है ।

वेदवती—ओह ! कैसी बेहद निठुरता है, छोटे छोटे बच्चों वाली सीता की भी आज यह दुर्दशा है ।

सीता—सखी वेदवती ! क्या कभी ईश्वर करेगा कि......

वेदवती—लजाती क्यों हो ? कहो न कि आर्यपुत्र को फिर देख सकूंगी ।

सीता (मनही मन) लज्जा की क्या बात है ? मैं कहती हूं (प्रकाश) क्या कुश लव के पिता के दर्शन से फिर भी कभी यह जीवन सफल होगा ?

वेदवती महाराज के दर्शन तो अभी होते हैं

सीता कैसे ?

(नेपथ्य में ऋषि)

हे आश्रमनिवासी लोगो ! आप सब सुने यहां से कुछ ही दूर पर महायज्ञ अश्वमेध शुरू हो रहा है । यज्ञ में सभी सब उपस्थित हैं । नाना देश निवासी वशिष्ठ, अत्रेय आदि सब ऋषि

तृतीय अङ्क

(...र्ग चलने से थका हुआ, बोझ उठाये, तपस्वी प्रवेश करता है)

...स—(थकान का अभिनय करके) गरमी की व्याकु-
लता के कारण बेअन्त प्रतीत होने वाले ग्रीष्म-
समय ने मुझे बहुत ही थका दिया है। थकान
से पिंडलियां ऐसी जकड़ी गई हैं कि अब पैर
उठाये नहीं उठते। पांवों के तलुवों में फफोले
फूट [illegible] कर फोड़े बन गये हैं। और तो और इतनी
सुकुमार देवी सीता, ऐसे कोमल कुमार कुश
लव भी तपस्वियों की टोली के साथ सूर्य
छिपने से पहिले ही नैमिष पहुंच गये [illegible]
पर मैं अभी यहीं पिछड़ रहा हूं [illegible]
चलना शुरू करता हूं [illegible]
का मार्ग दिखलाता [illegible]
[illegible]
नैमिष में आए हुए हैं [illegible]

दिखा देता हूं। ये अनजाने में ही वाल्मीकि जी के आश्रम जा पहुंचेंगे । भाई जी ! इधर को, इधर को।

राम—(गहरी सांस लेकर)

विकल करदिया उस जलनिधि में सेतु विशाल बनाना
शुद्धि-परीक्षा में देवी की कुछ न अग्नि को माना।
सूर्यवंश की पावन संतति पर भी दृष्टि न डाली
प्रिया छोड़ ये करतूतें की मैंने काली काली ॥३॥

(घूम कर) ओह ! बेचारी को ऐसा प्रवासित किया है कि जहां कोई भी सहारा नहीं—

कातर दृष्टि डालती होंगी किधर किधर तुम प्यारी !
कहां बंधाती ढारस होंगी दिल को तुम सुकुमारी !!
कदम कदम पर मिलते होंगे जिस वन में कुश कांटे
वैसे वहां जा रही होंगी तुम निराश दिन काटे ॥४॥

लक्ष्मण (मन ही मन) आर्या के देश निकाले और स्वामी [illegible]
[illegible]

मदकल-कलहंसी-गीतों से मंजुल तीरों वाली।
विकसित कमलों के परिमल से दिग् दिगन्त महकाती
नदी गोमती देव! दीखती यह आगे इठलाती ॥५॥

राम—(वायु-स्पर्श का अभिनय करके)

चन्द्र किरण, चन्दन, मलयानिल, शीतल मुक्ता माला
प्रिया-विरह में मुझे होगये दावानल की ज्वाला।
हुई अचानक सुखद गोमती-पवन आज यह प्यारी
क्योंकि रह रही कहीं उधर ही वह त्यक्ता बेचारी ॥६॥

लक्ष्मण—नदी की यह ढाल बहुत ही बेढव है इसलिए सावधानी से उतरिये (दोनों उतरते हैं) (देख कर) ये रेतीले मैदान पास २ पड़े बहुत से पद चिन्हों से अङ्कित हैं, ये तट लतायें केवल नाल शेष रह जाने से बता रही हैं कि किसी ने इनके फूल चुगे हैं, पत्ते तोड़ लेने से इन वृक्षों की छाया छीदी होगई है मालूम होता है कि यहां कहीं पास ही मनुष्यों का निवास अवश्य है। देखिए—

देवार्चन के लिये हाल ही जो उपहार संवारे
कैसे सुन्दर बालू वाले उनसे हुए किनारे।
तरल तरङ्गों में यह बहती कुन्द कुसुम की माला
मानो खेल रही है कोई चपल भुजंगम-वाला ॥७॥

है ? तो भी रास्ता दिखाओ जिससे पानी के किनारे को न छोड़ते हुए उस निवास-स्थान पर जा पहुँचें।

लक्ष्मण—कांटे, कंकर, सीपों के टुकड़ों से यह नदीतट चलने के सर्वथा अयोग्य है अतः मेरे बताये मार्ग पर ही आप धीरे धीरे आइये।

राम—ऐसा ही सही। यह कुन्दमाला मुझे बड़ी प्यारी मालूम हो रही है, तो भी किसी देवता को भेंट की गई होगी इस शंका से मैं इसे धारण नहीं कर सकता। (छोड़ देता है)

लक्ष्मण—वेत्र-लता यह—इसे लाँघिये, बचिये सीपी है यह,
सावधान हो झुकिये—आगे तरु है बहुत झुका वह।
खींच धनुष से दूर छोड़िये शाख वक्र है कोई,
धीरे चलें न चौंक पड़े जो कहीं शेरनी सोई॥ ८॥

राम—(उसी प्रकार चलकर) वत्स ! क्या यहीं भगवान् वाल्मीकि का आश्रम है ?

लक्ष्मण—आप क्या देख रहे हैं ?

राम—जाता जिसे ध्यान बिना न देखा,
है छा रही कोमल धूम-लेखा।
समीर के साथ सुमन्द आता,
है साम का गान अहो सुहाता॥ ९॥

जनों की पूजा के योग्य फूल बीन लूं।

(जाकर फूल बीनती है)

लक्ष्मण—यह पद-पंक्ति मार्ग के साथ २ चलती हुई रेनी को छोड़कर इस ऊंचे स्थल पर आ चढ़ी और अदृश्य हो गई। तो इसी, सामने दीख रही, लता-कुंज की छाया में बैठकर ठंडे हो भगवान् वाल्मीकि के पास पहुंचेंगे।

राम—जो इच्छा।

(पहुंच कर दोनों बैठ जाते हैं)

राम—(आह भरकर डबडबाई आंखों से) वत्स! वत्स!

सीता—(कान देकर) यह कौन है जो पानी भरे नम्र जलधर के घोष के समान गंभीर, अपने मधुर कण्ठस्वर से अत्यन्त दुःखभाजन मेरे शरीर को भी पुलकित कर रहा है? तो देखूं—यह कौन है? अथवा, असली बात को जाने बिना अनुचित स्थान में दृष्टिपात करना मुझे उचित नहीं। या, यहां जानना ही क्या? पर पुरुष के शब्द को सुनकर मेरा शरीर रोमाञ्चित नहीं हो सकता। निश्चय ही वह निठुर यहां आपहुंचा। तो निहार लूं? अथवा, उनके दर्शन के लिये मैं इतनी आतुर

देवी ने दुःख ही सहे पाकर मुझे अधन्य ॥ १३ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! कहां घर से निकालना और कहां यह शोक ?

राम—हाय ! महाराज जनक की राजदुलारी !

सीता—हाय ! मेरे पुण्यकर्मों की कमी के कारण मुझ से छिन गये !

राम—हाय ! वनवास की संगिन !

सीता—हाय ! आज यह भी नसीब नहीं ।

राम—ओह ! तुम कहां हो ?

सीता—अभागिनी जहां होती हैं ।

राम—मुझ से बोलो ।

सीता—जिसे तुमने इस तरह ठुकरा दिया, उससे फिर बोलना क्या ?

(राम शोकातुर हो जाता है)

लक्ष्मण—भाईजी ! विनती करता हूँ कि आप अब शोक न करें ।

राम—शोक करने योग्य प्यारी के लिये क्यों न करूं शोक ?

सीता—सीता आज शोक करने योग्य है—यह मत कहो आर्यपुत्र ! जिसके लिये प्रेमी के हृदय में तड़प है क्या वह भी शोक करने योग्य है ?

राम—वत्स लक्ष्मण! उसके निवास-स्थान को खोज निकालना संभव है क्या?

सीता—दिन छिप चुकने पर पति से मिलने में असमर्थ चकवी की तरह वह तो यहीं खड़ी है अलग।

लक्ष्मण—असंभव है उनका खोज मिलना।

राम—इतने दिनों से फलता फूलता रघु का कुल मैं ने उजाड़ दिया! (रोता है)

सीता—(शोक के साथ) ये बहुत ही व्याकुल हो रहे हैं। क्या करूं? इनकी आंखों को बार बार धुंधला रहे आंसुओं को साहस कर मैं पोंछ दूं? (कदम उठा कर) या, लोगों की फबतियों से बचना ही चाहिये। इन से अभी तक मेरी चार आंखें नहीं हुई। तीव्र शोकावेश से मैं विवश हुई जारही हूं। मुनिजन यहां प्रायः आते जाते रहते हैं ऐसा न हो कि कोई अकस्मात् मुझे इस दशा में यहां देख ले। तो चलूं लता जाल से ढके हुए इस सरल मार्ग से आश्रम पहुँच कर कुश लव को मिलूं।

(निहारती हुई जाती है)

(ऋषि प्रवेश करता है)

ऋषि—भगवान वाल्मीकि ने मुझे आज्ञा दी है कि "वत्स

वादरायण ! मैंने सुना है कि लक्ष्मण को साथ लि
रामचन्द्र इस वन में आये हुए हैं। कहीं ऐसा न हो
कि वे हमें मध्यान्ह के नित्य कर्त्तव्यों में व्यग्र समझ
कर बाहर ही बैठ रहें। तो तुम उनके पास जाकर
कहो कि—"मैं मध्यान्ह के कार्य्यों से निवृत्त होकर
आप के दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ"। तो चलूँ
गुरुजी की आज्ञा से रामचन्द्र जी का पता लगाऊँ।

(चलता है)

लक्ष्मण—(देख कर शीघ्रता से) भाई जी ! यह कोई तपस्वी
इधर ही चला आ रहा है।

(राम आंसू पोंछ कर, स्थिर हो बैठ जाता है)

ऋषि—(देख कर) इस लता-कुञ्ज की छाया में दो पुरुष
दीखते हैं। ये ही राम लक्ष्मण न हों ? (सोचकर)
अथवा सन्देह ही क्या है ?

पवन मन्द है, ग्रीष्म-भानु की भी किरणें हैं सुख-म
केसरियों के साथ हरिणियां विहर रही हैं निर्भय।
इन्हें न छोड़ दुपहरी में भी सिकुड़ी तरु की छाया
निश्चय ही श्रीराम नाम का हरि यह वन में आया ॥१४

केवल अलौकिक प्रभाव से ही नहीं किन्तु सूरत शक्ल
से भी तो यही निश्चय होता है—

देह सुदृढ़ व्यायाम से लोचन-कमल विशाल।
उन्नत वक्ष, सुदीर्घ भुज, ये दशरथ के लाल ॥१५॥
तो, इनके पास पहुँच कर सब हाल कह दूं। (पास जाकर) राजन्! कल्याण हो।

राम—प्रणाम करता हूँ।

ऋषि—विजय हो।

राम—कैसे कष्ट किया आपने ?

ऋषि—सब आवश्यक कार्य्यों से निश्चिन्त होकर भगवान् वाल्मीकि आप की प्रतीक्षा में बैठे हैं।

राम—(देख कर) ओह! दोपहर ढल गया। तभी तो—
तरु-मूलों में काट कर कठिन काल-मध्यान्ह।
निकल चली छाया शनैः अब यह पथिक-समान ॥१६॥

और भी—दोपहरी के प्रखर ताप को जल में नहा बहाता
गीली, शीतल, कर्ण-पवन से मुख को सुख पहुँचाता।
शुण्डा-ताड़ित नदी-सलिल से कलकल नाद उठाता
तट की ओर आरहा यह गज वीचि-विभङ्ग बहाता ॥१७॥

सब जाते हैं

चतुर्थ अङ्क

(दो तापसियों का प्रवेश)

पहली—भगवान् वाल्मीकि के तपोवन में रामायण गाने के लिये आई तिलोत्तमा अप्सरा ने मुझे कहा—"मैं दिव्यशक्ति द्वारा सीता का रूप धारण कर श्री राम के सामने जा परीक्षा करूँगी कि सीता के लिये उनके हृदय में कृपा है या नहीं। इसलिये तू उन का पता लगा।" सो सखी यज्ञवती मुझे उनका डेरा दिखा दो।

यज्ञवती—सखी वेदवती ! तिलोत्तमा जब बात कह रही थी तब पास ही घनी लता-झाड़ियों में छिप कर बैठ, श्रीराम के मित्र * आर्य्य कौशिक ने सब कुछ सुन लिया।

* मुद्रित पुस्तक में इस स्थल पर हसित पाठ है परन्तु आगे सर्वत्र विदूषक का नाम कौशिक आया है। मालूम होता है कि इस हसित के स्थान पर भी कौशिक ही होना चाहिये। —अनुवादक।

वेदवती—बड़ा गज़ब हो गया। भेद को जानने वाले उन के सामने यदि तिलोत्तमा ने सीता का अनुकरण किया तो यह उलटी हमारी ही हँसी होगी। तो चलूं प्रिय-सखी तिलोत्तमा को इस से सावधान कर दूं।

यज्ञवती—सखी वेदवती! सीता अब कहां होगी?

वेदवती—सुनो—आज सात दिन हुए कि इकट्ठी हुई सब तपोवन-वासिनियों ने भगवान् वाल्मीकि से प्रार्थना की कि "आज कल महाराज रामचन्द्र जी के यहां आये रहने के कारण आश्रम की इस पुष्करिणी पर सदा ही सब तरह के लोगों की दृष्टि पड़ती रहती है इसलिये कमल-फूल तोड़ने तथा स्नानादि कार्य्य के लिये यह हमारे योग्य नहीं रही।" तब ध्यान से निश्चल नेत्र वाले महर्षि ने थोड़ी देर तक कुछ सोचकर कहा—"इस पुष्करिणी पर आई स्त्रियां पुरुषों के लिये अलक्ष्य होंगी।" तब से श्रीराम की [illegible] से [illegible] सीता सात दिन [illegible] पुष्करिणी [illegible] ही व्यतीत करती है

यज्ञवती—[illegible]

चतुर्थ अङ्क

(दो तापसियों का प्रवेश)

पहली—भगवान् वाल्मीकि के तपोवन में रामायण गाने के लिये आई तिलोत्तमा अप्सरा ने मुझे कहा—"मैं दिव्यशक्ति द्वारा सीता का रूप धारण कर श्री राम के सामने जा परीक्षा करूँगी कि सीता के लिये उनके हृदय में कृपा है या नहीं। इसलिये तू उन का पता लगा।" तो सखी यज्ञवती मुझे उनका डेरा दिखा दो।

यज्ञवती—सखी वेदवती! तिलोत्तमा जब बात कह रही थी तब पास ही घनी लता-झाड़ियों में छिप कर बैठे, श्रीराम के मित्र *आर्य कौशिक ने सब कुछ सुन लिया।

---

* मुद्रित पुस्तक में इस स्थल पर हस्तिन पाठ है परन्तु आगे सर्वत्र विदूषक का नाम कौशिक आया है। मालूम होता है कि इस हस्तिन के स्थान पर भी कौशिक ही होना चाहिये। अनुवादक।

के सङ्गीन से सुभग यह दुपट्टा, तुम्हारी इस वियोगा-
वस्था के अनुकूल नहीं।

सीता—सखी! महाराज की आज्ञा से मिले चौदह वर्ष के
वनवास में जब हम चित्रकूट को छोड़कर दक्षिण
की ओर चले तो बहुत दिनों साथ रहने के
कारण मेरी सहेली बन गई वनदेवी वासन्ती
ने चिन्तित हो अपने स्मृति-चिह्न के रूप में यह
चन्द्रमा सा श्वेत, सुगन्ध-सुवासित, दिव्य दुपट्टा,
मुझे भेंट किया था। इतने दिनों में और [illegible]-
पुत्र के साथ में रहने के कारण वह मुझे [illegible]
प्रिय होगया है और जो आज इस [illegible]
भी मेरा संगी है वही यह दुपट्टा [illegible]
ओढ़ लिया है (रोती है)

वासन्ती—रोओ मत प्यारी सखी! [illegible]
वनवास जैसा [illegible] तो नहीं।

सीता—मैं धैर्य न खोऊं। [illegible]

यज्ञवती—भाग्य में ये दुःख भोगने लिखे थे। अब तुम यहीं पुष्करिणी के किनारे बैठ इन पक्षि-युगलों की विलास-लीलाओं को देख-देख कर ज़रा अपने दिल को बहलाओ, मैं भी इतने में अपना काम देखूं। (चलती है)

सीता—(पुष्करिणी को देखकर) यह हंसों का जोड़ा कैसा धन्य है जो इस प्रकार विरह-रहित होकर संयोग-सुख को लूट रहा है। दम्पतियों को प्रेम का उपदेश करने के लिए मेरे वियोग के समान योग्य उपाध्याय, कोई नहीं। एक दूसरे के चित्त को चुराने वाले हावभाव से ये पक्षी आपस में कैसे चोचले कर रहे हैं?

यज्ञवती—एकदम, शीघ्र ही अपने अपने आसनों से उठकर अपनी पत्नियों के कन्धों पर वल्कल-दुकूल को सँवारते हुए, आनन्द और आश्चर्य से विकस्मित लोचनों वाले सारे मुनिजन एक ही ओर को मुंह किये चल दिये। मालूम होता है कि महाराज रामचन्द्र आ पहुंचे।

(राम तथा चिन्तित कण्व का प्रवेश)

कण्व भगवान वाल्मीकि ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं

राम—मेरा हृदय भक्ति-भाव से ऐसा भर रहा है कि उसे सुखदाई या असुखदाई—इस विषय में विचार करने का भी अवसर नहीं। देखो—

दाव-दहन को यज्ञानल सा, यूप द्रुमों को मान,
विहगों के कलरव को कोमल मुनिजन-साम-समान।
गौरव से इन वन-हरिणों को समझ तपोधन शान्त,
ज्यों-त्यों कर पद धरता हूं मैं इस नैमिष के प्रान्त॥ ४॥

कण्व—परम धर्मपरायण, सारे संसार के अभ्युदय और निःश्रेयस के कारणभूत, आप-सरीखे महाराज के लिये तपश्चर्याओं के निर्विघ्न सिद्धिक्षेत्र, तथा अपने पूर्वज-राजर्षियों से सेवित इस नैमिषारण्य में भक्ति होना उचित ही है।

केवल एक-धनुष के बल यह भू-मण्डल अपना कर,
सौ-यज्ञों से मार्ग स्वर्ग का सुन्दर सरल बनाकर।
रघुवंशी दे भुवन-भार पुत्रों को चौथेपन में,
मोक्षसिद्धि के लिए सदा से आते हैं इस वन में॥ ५॥

(राम प्रणाम करते हैं

कण्व—अन्य तपोवनों से विलक्षण, इस नैमिष की महिमा को देखो

यहां रह रह चन्द्रचूड़ की चन्द्रकला की निर्मल
ज्योत्स्ना में मिल सूर्य-तेज भी हो जाता है कोमल।

किनना खेद है। ये पशु-पक्षियों की अपेक्षा भी प्रवासियों को अधिक शून्य-हृदय समझते हैं।

(प्रकाश) इधर भी ध्यान दें—

विन-वसन्त भी मुनि प्रभाव से खिली मंजरी वाली,
छोड़-छोड़ इस पावन-वन में घनी आम की डाली।
मेघ-मालिका जैसे उठते होम-धूम से डर कर,
कमल-कोष में छिपने को ये भाग रहे हैं मधुकर ॥११॥

राम—यह क्या ? निरन्तर आहुतियों से बढ़ता हुआ यह धूम-समूह भ्रमरों की तरह मुझे भी सताने लगा।

(धूम-पीड़ा का अभिनय करता है)

कण्व—सचमुच ही तुम्हारी आँखें धूएँ से व्याकुल हो रहीं हैं ?

राम—

रो रो प्रिया-वियोग में दुःखी हुए ये नैन।
उठे होम के धूम से और हुए बेचैन ॥१२॥

कण्व—अच्छा तो तुम सामने वाली इस आश्रम-पुष्करिणी में स्नान कर, इसके शीतल जल से धोकर आंखों की जलन को दूर कर घड़ी भर यहीं आराम करो, मैं भी इस अग्निहोत्र के समय कुलपति जी की सेवा में उपस्थित हो जाऊँ। (जाता है)

राम—(चलकर) इस पुष्करिणी में उतरूं। (उतर कर) अहा इस सरोवर का जल कैसा निर्मल है ? (पानी में परछाईं देख कर शीघ्रता से) यह क्या प्यारी भी यहीं है ? (प्रसन्नता तथा आश्चर्य का अभिनय करता है)।

सीता—(देख कर) ओह! क्या हो गया मुझे ? हंसों के जोड़े को देखने में इतनी भूल गई कि अचानक आपहुंचे इन्हें भी न जान सकी। तो हट चलूँ यहां से ? (हट जाती है)।

राम—यह क्या ? मेरा अभिनन्दन किये विना ही प्यारी चल दीं।

पीले मुख, आकुल हो फिर फिर माथे पर छितरातीं—
अलकों मे चिर-विरह व्यथा की अपनी कथा सुनाती।
कर कर विपुल मनोरथ दीखी वर्षों मे क्षण भर को
मुझे छोड़ कर मेरी प्यारी फिर यह चली किधर को ? ॥१३॥

तो इसे पकड़ तो लूँ। (बाहें फैला कर) यह तो प्यारी नहीं, किन्तु

प्रिया जा रही थी कहीं पुष्करिणी की राह।
ठगा गया मैं देख कर जल में उसकी छांह ॥१४॥

तो इस छाया की कारणभूत असली प्रिया को

ढूंढूं। (ढूंढ़ता है) आना जाना न होने के कारण यह पुष्करिणी का तट निर्जन है। किन्तु छाया भी आकृति के बिना हो नहीं सकती। यह क्या रहस्य है ?

सीता—आर्यपुत्र को मेरा प्रतिबिम्ब तो दिखाई दे रहा है पर मैं नहीं—यह क्या बात है ? (सोच कर) ओह मैं समझ गई। यह मुनि की कृपा है कि इस पुष्करिणी पर तपोवन की स्त्रियों को पुरुष की आंखें नहीं देख सकतीं। यदि महर्षि की कृपा से यह छाया भी अदृश्य हो जाती तो मुझ पर बड़ा अनुग्रह होता। मैं यहां से हट जाऊं जिससे कि यह छाया भी इन्हें न दीख सके। (हटती है)।

राम—अच्छा तो, निर्मलजल में पड़ रही प्यारी के प्रतिबिम्ब को ही देखूं (देख कर) अब वह भी ओझल हो गया। (मूर्छित हो जाते हैं)।

सीता—हा धिक्! हा धिक्! ये तो बेहोश हो गये! तो चलूं इनके पास। (जाती है) अथवा, यदि मेरे देखने से ये बिगड़ उठे तो मुनिजन मुझे ढीठ समझेंगे। तो लौट जाऊं ? (लौटती है)

था, यह समय उचित अनुचित का विचार करने का नहीं। भले ही ये नाराज़ हों और मुनि-जन भी मुझे ढीठ कहें। मैं ऐसी दशा में पड़े इनकी उपेक्षा नहीं कर सकती। (पास जाती है) सब लोकपालो ! सुनो—आर्यपुत्र ने मुझे निकाल दिया है। मैं आज अविनीत होकर इनकी आज्ञा का भंग नहीं कर रही किन्तु शोकातिशय से मुझे अपने पर काबू नहीं रहा इसलिये मैं यह गुस्ताख़ी कर रही हूं। (पास पहुँच कर, देखकर) हाय, हाय, ये तो अचेतन पड़े हैं ? (आलिंगन करती है) (राम फिर होश में आते हैं) (सीता हट जाती है)

राम—(हाथ बढ़ा कर आँचल पकड़ लेते हैं) यह क्या ? कपड़े का पल्ला सा, कौन होगा यह ? (सोच कर) अथवा—

विना प्रिया के कौन है जन जगती पर धीर।
निज अंचल से कर सके मुझ पर जो कि समीर ॥१८॥

इसे देखूं तो (आंखें खोलते हुए) लगातार आँसू भर आने से दीखता कुछ भी नहीं। इस कपड़े को खींच कर छुड़ालूं ? (आंचल से आंसू पोंछते हुए उस दुपट्टे को खींचते हैं)।

सीता—(दुपट्टे को छोड़ देती है) आर्य पुत्र ! तुमसे ही छूटे हुए, इस पराये जन के दुपट्टे के पल्ले से, अपने आँसू पोंछना तुम्हें उचित नहीं।

राम (गिरे हुए दुपट्टे को देख कर) यह क्या ? केवल दुपट्टा ही दीख रहा है उसका ओढ़ने वाला नहीं।

हा उतावला, मैंने खींचा किसका [illegible]
[illegible] ॥१९॥

[illegible]

[illegible]

रति लीला के बाद खेद को पंखा बन था हरता।
निशा-कलह में मृगनयनी का जो था बना बिछावन,
पाया वही दैव से मैंने प्रिया-दुकूल सुहावन ॥२०॥

सीता—भाग्य से पहिचान लिया आर्य पुत्र ने।

राम—अपनी प्यारी के प्यारे इस दुपट्टे का क्या सत्कार करूं? (सोच कर) यूं हो, यही इसका असाधारण अद्वितीय सन्मान है। (ओढ़ लेते हैं) (दुपट्टा ओढ़े हुए अपने को देख कर) मुझे दो दुपट्टे ओढ़े हुए देखकर मुनिजन कुछ का कुछ सोचने लगेंगे। तो अपना दुपट्टा उतार दूं? (उतारता है)

सीता—(उठा कर प्रसन्नता से) जान बची लाखों पाये। (सूंघ कर) मेरे सौभाग्य से इनके इस दुपट्टे में इतर फुलेल की महक नहीं। रघुवंशी सचमुच सच्चे होते हैं। (ओढ़ कर) प्यारे के आलिङ्गन के समान स्पर्श-सुख देने वाले इस दुपट्टे को ओढ़ कर मेरा शरीर ऐसा पुलकित हो रहा है मानों मैं उनके हृदय पर सिर रख कर विश्राम कर रही हूँ।

राम—(विस्मय से) मेरा दुपट्टा पृथिवी पर पड़ने से पहिले ही, किसी ने बीच में उड़ा लिया तो मैं समझता हूं कि मेरे मनोरथ अब शीघ्र ही फलने फूलने वाले हैं।

(सोचता हुआ) उठाए जाते हुए दुपट्टे की छाया तो पानी में दीखी पर सीता नहीं। तपोवन निवासी-मुनियों के प्रभाव से उसमें यह शक्ति आ गई होगी। तो तुरंत ही उससे भेंट कैसे हो? प्यारी! क्या पिछली सारी ही बातें तूने भुलादीं? जो अपनी सूरत भर दिखाकर भी मेरी आंखों को शीतल नहीं करती।

सीता—वे पुरानी बातें अब कहां?

राम—

चित्रकूट में फूल बीनने तू आजाती आप,
कभी कभी मैं भी पीछे से तब आकर चुपचाप।
झट से झपट उठा लेता था, फूल सहित दुकूल,
प्यारी प्यारी उन बातों को गई आज क्या भूल? ॥[illegible]॥

सीता—(हँस कर) तभी तो तुम से छिपाकर लिये हुए हूँ दीठ

राम—कुछ भी नहीं बोलती?

बागडोर खींचने से थमते हैं सारथी के,
पड़ने से चाबुक के ज़ोर भी हैं बांधते ।
थम भी न सकते हैं, सकते न भाग भी वे,
हाल से उलझते हुए हैं पैर कांपते ॥
ऊंच नीच वाले ऊबड़ शैल के शिखर से वे,
फिसल फिसल जाते खुरों को सम्हालते ।
भानु के तुरंग अब उतर किसी प्रकार,
जाते हैं अपार पारावार को फलांगते ॥ ८४ ॥

(चले जाते हैं)

चौथा अंक समाप्त

पंचम अङ्क

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक– (नेपथ्य की ओर देखकर) ऋषिमुनियों के आने का समय हो रहा है, जल्दी करो तुम भी।

(राम का प्रवेश)

राम—नहा, हवन कर, उदय होरहे रवि का कर अभिनन्दन।
आया करने को प्रभात में मुनियों का पद-वन्दन ॥१॥

विदूषक—यह है सभा-मण्डप। चलो इसमें।

राम—(प्रविष्ट होकर चिन्ता का अभिनय करता हुआ) ओह! आश्चर्य है, कल कैसी हुई?

निर्मलता से शून्य-रूपमय उस जल में देखा, बाला—
का प्रसन्नमुख, फीकी गालों पर बिखरी अलकों वाला ॥२॥

या यह सब तिलोत्तमा के हाथों की सफ़ाई ही थी?

उसके हाथों गुँथी हुई सी गूँथे कुन्द-कुसुम-माला,
चिन्ह बना दे रेती में उन पैरों की समता वाला।
जल में बिम्ब दिखादे उसका, करके कुछ कौशल काला,
वसन-पवन से पर न रामको छू सकती वह सुरबाला ॥३॥

(चिन्ता का अभिनय करता है)

विदूषक—यह चिन्तित सा दीख रहा है। तो आज बैठकर इसे आग्रह पूर्वक कहूं। (बैठ कर) मित्र ! नवमेघ के समान सुन्दर, नीले रंगवाले, गले में पड़े मोतियों के हार से सुशोभित, बहुत ऊँचे कठिनाई से चढ़ने योग्य, नीलम-जड़े स्तम्भ के समान दिखने वाले तुम्हें जहां तहां बैठे देखकर मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है । इसलिये अब तुम सेवा के लिये आये हुए अनेक नृप-सामन्त-रूप भ्रमरों से गूंज रहे दरबार के परिजनरूप पंखड़ियों से अलंकृत, लक्ष्मी के निवास-भवन सदृश, सभामण्डपगत कमल के कोष तुल्य इस सिंहासन पर बैठकर विष्णु भगवान के नाभिकमल में विराजमान ब्रह्मा की शान को फीका करो।

राम—तुम जो कहो। (बैठ कर चिन्ता का अभिनय करता हुआ) आज मैं, मानो नये सिर से [illegible] का अनुभव करने वाला बन गया। [illegible] नय करता हुआ [illegible] हृदय पर [illegible] पूरी निराशा ने [illegible] पर डाला [illegible] नए

इससे चिर विरही भी मुझको, अब तक हुआ न कष्ट।
छाया-दर्शन-आदि कारणों से यह हो उत्पन्न,
करने लगा मुझे सुख दुःख से पुनः प्रसन्न विषण्ण ॥४॥

[चिन्ता का अभिनय करता है]

विदूषक—(देख कर मन ही मन) अब इसके मन की बात को ताड़ूं। (प्रकाश) हे मित्र ! ये तुम्हारे सिंहासन के सिंह, बहुत भारी बोझ उठाने के कारण थके हुए से, मुख विवर से निकल कर गिरती हुई गजमुक्ताओं के बहाने से मानों झाग छोड़ रहे हैं। मैं समझता हूं कि भुजाओं में पृथिवी को, और हृदय में पृथिवी-पुत्री को धारण करते हुए तुम बहुत भारी होगये हो।

राम—(मन ही मन) सीता की चर्चा छेड़ कर कौशिक भेद लेना चाहता है। यह मेरा बचपन का मित्र है तो इससे क्या छिपाना ? (प्रकाश) मित्र ! ठीक है, मुझे हर घड़ी सीता का ध्यान बना रहता है।

विदूषक—दोष के सम्बन्ध में या गुण के ?

राम—न दोष के न गुण के।

विदूषक—इन दोनों के सिवाय स्त्रियों को स्मरण कर ही कैसे सकते हैं ?

राम—साधारण स्त्री-पुरुषों का प्रेमावेश, कारण पर अव-लम्बित होता है किन्तु सीता-राम का प्रेम वैसा नहीं।

सुख दुःख में सम, प्रकट स्वयं ही होने से जिसको कहकर-
मुख से नहीं बताया जाता, अपना सा ही वह उस पर।
गुण दोषों की जहां न गणना, जिसमें नहीं स्वार्थ का गन्ध,
हम दोनों के हृदयों में तो वही प्रेम-मय था सम्बन्ध ॥५॥

विदूषक—ऊपर से मीठी २ बातें बनाकर तुमने कुसुम-सुकुमार भोली भाली सीता देवी को खूब ठगा। वैसे ही मुझे भी ठगना चाहते हो।

राम—मेरा सीता से सर्वथा ही प्रेम न था—यह तुमने ठीक नहीं समझा।

बाहर रूखा हृदय में मेरे प्रेम अपार।
जैसे कठिन कृपाल के भीतर कोमल नार ॥६॥

विदूषक— जैसे बड़े भारी [illegible] से [illegible] भी समुद्र अपने [illegible] [illegible] स्वभाव से [illegible] [illegible]

बूँद की तरह एक दम सूख जाता हूँ। (रोता है)

राम—यदि तुम आज भी सीता को स्मरण योग्य मानते हो तो उसका परित्याग करते हुए मुझे तुमने क्यों न रोका ?

विदूपक—प्रसन्न-मुख राजा को भी कोई सेवक समझाने का साहस नहीं कर सकता, फिर क्रोध से भयंकर मुखवाले की तो बात ही क्या ?

राम—मित्र ! मुझ जैसे, क्रोध में इतने अन्धे नहीं होजाते कि अपने हित-चिन्तकों की बात भी न सुनें।

पीड़ित करने लगे प्रजा को जब नृप अत्याचारी
है कर्तव्य-रोकदें उसको सचिव आदि हितकारी।
बहुत तपाता है यह जग को जब कि मरीची-माली
आकर रोक उसे लेती है शान्तिमयी-जलदाली ॥७॥

मित्र ! सीता की चर्चा छिड़ कर तो हम दोनों को ही दुःख देने वाली है इसलिये तुम ड्योढ़ी पर जाओ और दरवानों से कहो कि ऋषि-मुनियों के पधारने का समय हो रहा है इसलिये वे सब द्वारों पर वर्दी में तैनात हो जावें।

विदूपक—राजन् ! कन्दमूल-फल खाने वाले, पेड़ों की छाल पहिनने वाले, लम्बे मोटे सोटों वाले इन बाबाओं

की ऐसी आव भगत क्यों ?

राम—मित्र ! तुम्हारा ऐसा सन्देह यहां उचित नहीं। इनकी ज्ञात-संपत्ति ही तो जीवात्मा-परमत्मा के संयोग सम्बन्धी सब गुत्थियों को खोलने वाली और पुरुष के परम कर्त्तव्यों का ज्ञान कराने वाली होती है। देखो—

इन पूज्यों के हाथों दीपित हुए बिना, हृदयास्थित—
ज्योति नित्य भी वस्तु-तत्व को कर सकती न प्रकाशित।
जब तक पावक नहीं पवन की वह सहायता पाता
एक तुच्छ से तृण-कण को भी देखो-नहीं जलाता ॥८॥

विदूषक—यदि सचमुच ही तपस्वियों का सत्संग इतना लाभकारी है तब तो मैं फ़ौरन जाकर तुम्हारी आज्ञा का पालन करता हूँ। (बाहर जाकर पुनः लौटकर) ओ हो हो ! अभी तुम्हारी आज्ञा से मैं द्वार पर गया तो देखा कि सलोने सांवले, किशोर आयुवाले, बालभाव के कारण शिर पर उगे मंगल-दूबों के कोमलांकुर सरीखे, शरीर का उठान पूरा न होने पर भी बड़े चुस्त चालाक दीखते, रूप की मोहिनी से कामदेव के कुमारों के समान शोभायमान, लाल हीरे की तरह दिपालमान, फुर्तीले, चंचल, मनहरण-से,

धीर, गंभीर, अत्यन्त प्यारे, जिनमें कहीं कोई कोर-कसर नहीं, मानों तुम्हारे ही अंशावतार हों ऐसे दो तापस-कुमार आये हुए हैं।

राम—(चाह के साथ) तो उन्हें मेरी आंखों से क्यों छिपा रक्खा है ?

विदूषक—बाल भाव से सुन्दर, कुतूहल उत्पन्न करने वाले। इन दोनों का परिचय तो पहले सुनलो—

राम—कहो, कहो,

विदूषक—वे दोनों भगवान् वाल्मीकि ऋषि के शिष्य हैं और वीणा के वजाने में उन्होंने कमाल ही हासिल कर रक्खा है।

वे कहते हैं—तपस्वियों का सम्मान करने के लिये राजपुरुषों को भी हमारी ही तरह पृथिवी पर बैठना चाहिये। हम एक महापुरुष के सम्बन्ध में एक महाकवि द्वारा बनाये, बड़े भावगर्भित, जिसे अभी तक किसी ने नहीं सुना, सरस, जिसका एक एक अक्षर बड़े मनोयोग पूर्वक चुन २ कर रक्खा गया है, ऐसे एक बड़े उच्च कोटि के संगीत को गान्धर्व वेद की विधि के अनुसार वीणा के साथ गाकर

सुनाएँगे। हमारी संगीतकला के ज्ञान से अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा क्या करता है— यह हमें देखना है। भगवान् वाल्मीकि ऋषि की हमें यही आज्ञा है।

—ओह ! अपनी विद्या का इन्हें कैसा सच्चा अभिमान है ? और इनका प्रस्ताव कैसा आत्मसन्मान के भावों से भरपूर है ? मित्र ! उनकी इच्छानुसार वचन देकर उन्हें तुरंत भीतर ले आओ। ऐसा न हो कि बाहर बहुत देर तक खड़े रहने से उकताकर वे लौट जाएँ।

षक—अब उकताना कैसा ? उनके परस्पर प्रेम, रूप-सादृश्य, और जुल्फ़ों वाले मुख को देख— महाराज दशरथ के सामने ऐसे ही राम लक्ष्मण दरबार में आया करते थे, इस तरह तुम्हारे बचपन और महाराज को याद कर डबडबाई आँखों वाले कंचुकी खड़े [illegible] कर रहे हैं

हमने बचपन [illegible]

र वही तो।

मेरी उत्सुकता बढ़ रही है [illegible]

विदूषक—जो आज्ञा। (जाता है)

(विदूषक रास्ता बतला रहा है, तपस्वी लव कुश आते हैं)

विदूषक—इधर आइये इधर।

(चल कर)

कुश—(एक ओर को होकर) प्रिय लव! अभी भगवान् वाल्मीकि की आज्ञा से, मां को प्रणाम कर, राज-मन्दिर की ओर मेरे चल देने पर, बालों को संवार देने के बहाने कुटिया में लेजाकर मां ने तुझे अलग कौनसा गुप्त सन्देश दिया है?

लव—अलग कुछ नहीं। किन्तु वहां उस समय बहुत से तपस्वियों की भीड़ थी इसलिये मुझे कुटिया में लेजाकर, मेरे गले में अपनी बाहें डाल मुझे अपनी पतली कमर से लिपटा, हृदय से लगा, मेरा माथा सूंघ, गहरी सांस ले मुसकराती हुई, अपने कान में कुंडल को निकाल, मेरा मुख चूम, शंकित सी हो मां बोली—"पुत्र! अपने स्वाभाविक अल्हड़पन को छोड़ तुम दोनों राजा का सत्कार करना और उनसे कुशल प्रश्न पूछना।" बस यही।

कुश—कुशल पूछना तो ठीक है पर प्रणाम क्यों?

लव—नहीं क्यों ?

कुश—हमारे कुलवाले किसी के सामने नहीं झुकते ।

लव—यह किसने कहा ?

कुश—मां ने

लव—उसी ने प्रणाम करने को भी कहा है । और बड़ों की आज्ञा पर तर्क वितर्क करना चाहिए नहीं ।

कुश—चलो चलते हैं । समयानुसार जो उचित होगा देखा जाएगा ।

(चलते हैं)

विदूषक—इधर को, इधर को ।

राम—(देख कर) कौशिक के साथ दोनों बालक आते हैं । इन्हें देख मेरा हृदय हाथ से निकला क्यों जा रहा है ? यह क्या मामला है ?

नहीं जानता-कौन है, क्या है इनका भाव

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

देखूँ तो—ये कैसे हैं ? हैं, मैं तो देख भी नहीं सकता। ज्यों ज्यों इन्हें निहारता हूँ,—मेरा हृदय भय, आनन्द, शोक और दया के एक अपूर्व मिश्रण में डूबता उतराता हुआ मूर्छित सा होजाता है। (मूर्छित सा होता हुआ) मेरी आँखें और आँसू ? किन्तु आँसू बह जाने से मेरा भरा हुआ हृदय हलका सा हो गया, मैं अब शान्त हूँ ? आँसू पोंछ साफ़ आँख से इन्हें फिर देखूँ (देख कर) गम्भीर और उदार गठन, शान्त और सुन्दर वेप रचना, विनीत और शानदार चालढाल—ये अवश्य ही किसी ऊँचे कुल के हैं।

विदूषक—ये महाराज हैं। इच्छानुसार आप इनके पास जाइये।

कुश—प्रिय लव! तुझे याद ही होगा जो मैंने प्रणाम के विषय में कहा था ?

लव—हाँ, नो अब कैसे ?

कुश—ज्यों ज्यों मैं इस राजा की ओर बढ़ रहा हूँ—दिल को धड़कानेवाला एक रोब मुझे दबाता जा रहा है। मेरा उचित आत्माभिमान मुझे छोड़ रहा है। मेरा सिर इसके सामने झुके बिना नहीं मानता। लो, मैं तो यह झुक गया।

लव—मेरी तरह आप भी कैसे विवश होगये ? (दोनों प्रणाम करते हैं)

राम—मर्यादा भङ्ग करना तुम्हें उचित नहीं। लो इन्होंने तो प्रणाम कर ही लिया। ओह, मेरे सामने ब्राह्मण का सिर झुक गया। (दुःखी होता है)

विदूषक—तुम मनमारे से क्यों बैठे हो ? इनके प्रणाम को तुमने स्वीकार नहीं किया। इसमें तुम्हारी हानि ही क्या ?

राम—ठीक समझा कौशिक ने। शिष्टाचार-चतुर महानुभावो ! सुनो—

मुझे किया है सिर को झुका के,
जो शीघ्रता से तुमने प्रणाम।
मेरे कानों ने पहुँचे तुम्हारे,
आचार्य हा! पं. चरणाम्बुजों में ॥५५॥

विदूषक—तुम्हारी आज्ञा को कौन टाल सकता है? प्रिय मित्र! प्रणाम का यह प्रकार सुन्दर है।

कुशलव—(उठ कर) महाराज सकुशल हैं?

राम—तुम्हें देख कर पुलक [illegible] सकुशल हूँ [illegible] कुशल-प्रश्न करना मुझे [illegible] है। [illegible] समान [illegible] मिलना नहीं [illegible] आलिंगन कर। [illegible]

हृदयग्राही स्पर्श है। (सोचकर) (यद्यपि मैंने अभी पुत्रालिंगन-सुख को अनुभव नहीं किया तो भी समझता हूँ कि यह ऐसा ही होता होगा। गृहस्थी लोग तपोवनों में जाने की इच्छा क्यों नहीं करते-यह अब समझ में आरहा है)

(दोनों को आधे सिंहासन पर बिठाता है)

दोनों—यह राजासन है। हम इस पर नहीं बैठ सकते।

राम—बीच में कुछ और रहने से तो तुम्हारा व्रत न टूटेगा, आओ मेरी गोद में बैठ जाओ (गोद में बिठाता है)।

दोनों—(अनिच्छा का अभिनय करते हैं) राजन् इतना अनुग्रह न कीजिए।

राम—इतना मत शरमाओ।

शिशुजन शैशव के वैभव से बड़े बड़े गुणवाले,
लोगों के भी लालनीय हैं, गोदी के उजियाले।
मुग्ध, वक्र, मृग-लाञ्छन को भी बाल भाव के कारण,
महादेव ने अपने सिर पर किया हुआ है धारण॥१२॥

(सजल लोचनों से देखता हुआ फिर हृदय से लगाता है। विदूषक को देख कर)

तुम्हें याद है—देवी को छोड़े कितने वर्ष हुए!

विदूषक—(सोच कर) याद है मुझ अभागे को। (उँगलियों पर गिन कर) बहुत हिसाब क्या लगाना ? अपने इन हाथों सीता देवी को छोड़े आज दस वर्ष तो अवश्य ही हो लिये।

राम—(कुमारों को देख कर) यदि प्रसवस कुशल हुआ हो और वह सन्तान आज जीवित हो तो अवश्य इन जैसी ही हो।

विदूषक—हाय ! सहम गया हूं मैं तो इस अज्ञात परित्यक्त-पुत्र की चर्चा से। (रोता है)

राम—मैं भी इन तापस-बालकों को देखकर असह्य वेदना अनुभव कर रहा हूँ।

जिस जिस दशा को प्राप्त होते पुत्र के संभावना-
मय, चित्र परदेशी पिता रचता हृदय को पट बना।
उस उस दशा में वस्तुत: ही पुत्र को फिर देखकर,
उसका हृदय होता द्रवित [illegible] भांति जाता है उभर ॥[illegible]॥

(आलिंगन कर रोता है)

विदूषक—(सहसा घबरा कर) [illegible] छोड़ो छोड़ो [illegible] छोड़ो छोड़ो, इन तपस्वी बालकों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मिलान से

राम—(सहसा बालकों को छोड़ता हुआ) यह क्या मित्र

विदूषक—अवध-वासी बड़े बूढ़ों को मैं ने कहते सुना है कि सूर्यवंशियों से अतिरिक्त, कोई, यदि इस सिंहासन पर चढ़ जाये तो उसका सिर सौ टुकड़े हो जाता है ।

राम—(जल्दी से) उतरो शीघ्र ।

(दोनों उतर पृथिवी पर बैठ जाते हैं)

राम—तुम सकुशल तो हो । कोई कष्ट तो नहीं तुम्हारे सिर में ?

दोनों—हम बिलकुल भले चंगे हैं । कुछ नहीं हुआ हमारे सिर को ।

विदूषक—अहो ! आश्चर्य है । इनके शरीर तो बिलकुल पहले जैसे स्वस्थ बने हुए हैं ।

राम—क्या आश्चर्य है ? (कुमारों को दिखाकर) शुभ आशीर्वादों से सुरक्षित होते हैं तपस्वियों के शरीर । देखो—

तपोधनों के सामने क्या तीरों का ज़ोर ?
सुरपति का भी वह जहां कुण्ठित कुलिश कठोर ॥१४॥

(कुमारों को सम्बोधन कर)

तुम बिना कुछ बिछाए, खाली फ़र्श पर क्यों बैठ गये ?

दोनों—हमने तो पहिले ही कहा था यह ।

राम—अच्छा ।

विदूषक—राजन् ! ये तुम्हारे अतिथि हैं । उचित वार्तालाप आदि से इनका सत्कार करो ।

राम—तुम्हारी मोहिनी मूर्ति को देखकर कुतूहल-परवश हो मैं पूछता हूं कि किस वर्ण और आश्रम को तुमने अपने जन्म और दीक्षा से सुशोभित किया है ?

कुश—(बोलने के लिये लव को इशारा करता है)

लव—दूसरा वर्ण, पहला आश्रम ।

—न—ये ब्राह्मण नहीं अतः इनके प्रणाम करने तथा नीचे बैठने से मुझे बहुत अधिक दोष नहीं लगा । अच्छा क्षत्रिय-कुलों के प्रथम पुरुष सूर्य, चन्द्र में से तुम्हारा वंश-प्रवर्त्तक कौन है ?

लव—सूर्यभगवान् ।

राम—कुल तो हमसे मिलता है ।

विदूषक—दोनों का एक ही उत्तर है ?

राम—तुम्हारा आपस में रक्त-सम्बन्ध भी है ?

लव—सगे भाई हैं हम ।

राम—सूरत शकल एक है, आयु में भी कुछ अन्तर नहीं

लव—हम जोड़िया हैं ।

राम—अब ठीक है । यह कहो कि तुम में से बड़ा कौ

है और उसका क्या नाम है ?

लव—(हाथ से कुश की ओर संकेत कर) आपके चरणों में प्रणाम करते समय मैं अपना नाम 'लव' उच्चारण करता हूं। और आप भी गुरु जी को प्रणाम करते हुए अपना नाम—(बीच में ही रुक जाता है)

कुश—मैं भी अपना नाम 'कुश' उच्चारण करता हूं।

राम—अहा! कैसा शानदार शिष्टाचार है?

विदूषक—भाई, नाम तो पता चल गये पर बड़ा कौन है- इसका उत्तर नहीं मिला।

राम—नहीं-हाथ के इशारे और नाम का उच्चारण न करने से बतला तो दिया कि कुश बड़ा है।

विदूषक—हां, अब समझा।

राम—तुम्हारे पिता जी का नाम क्या है?

लव—यही-भगवान् वाल्मीकि।

राम—किस सम्बन्ध से?

लव—उपनयन-सम्बन्ध से।

राम—मैं तो तुम्हारे शरीर उत्पादक पिता को पूछ रहा हूं।

लव—उसका नाम मैं नहीं जानता। हमारे आश्रम में उसका नाम कोई नहीं लेता।

राम—ओह कैसा अद्‌भुत है ?

कुश—मैं जानता हूं उसका नाम।

राम—कहो।

कुश—निठुर।

राम—(विदूषक की ओर देखकर) विचित्र नाम है।

विदूषक—(सोचकर) यह पूछता हूं कि 'निठुर' इस नाम से उसे कौन बुलाता है ?

कुश—मां।

विदूषक—कभी क्रोध में आकर वह ऐसा कहती है या सदा ही।

कुश—लड़कपन के कारण जब हमसे कुछ भूल हो जाती है तो ताना देकर यूं कहती है—'निठुर के पुत्रो दंगा मत करो।'

विदूषक—इनके पिता का नाम यदि 'निठुर' है तो स्पष्ट है कि उसने इनकी मां का अपमान किया हो[illegible]

से निष्फल किया करती होगी। (आंखों में आंसू भरकर देखता है) वह 'निठुर' तुम्हारे आश्रम में है क्या।

लव—नहीं।

राम—(जल्दी से) उसके विषय में कोई समाचार मिल जाता है।

लव—(कुश की ओर देखने लगता है)

कुश—हमने अभी तक उसके चरणों में कभी नमस्कार नहीं किया। हां, मां की विरह-सूचक वेणी यह अवश्य बतला रही है कि वह कहीं जीता है।

राम—उसने कभी तुमसे प्यार किया है?

कुश—वह भी नहीं।

राम—ओह! कैसा लम्बा और दारुण प्रवास है कि इतने दिनों तक भी उसने तुम्हें नहीं देखा (विदूषक को देखकर) इनकी मा का नाम पूछने को मेरी बड़ी उत्कण्ठा है, किन्तु परस्त्री के सम्बन्ध में प्रश्न करना उचित नहीं। विशेषकर तपोवन में। तो क्या उपाय है?

विदूषक—(आपस में) ब्राह्मण की ज़बान पर कोई ताला नहीं डाल सकता। लो मैं पूछता हूं।

(प्रकाश) भाई, तुम्हारी मां का क्या नाम है ?

लव—उनके दो नाम हैं।

विदूषक—कैसे ?

लव—तपस्वी लोग तो उसे देवी कहते हैं और भगवान् वाल्मीकि 'वधू'।

राम—यह कौनसा क्षत्रिय कुल है जो भगवान् वाल्मीकि के मुख से निकले 'वधू' शब्द से पूजित हो रहा है ?

विदूषक—क्षत्रिय कुल बहुत हैं। क्या पता चलता है कि यह कौन है ?

राम—ज़रा इधर तो सुनो मित्र !

विदूषक—(पास जाकर) आज्ञा।

राम—इन कुमारों का सारा वृत्तान्त क्या हमारे कुल की घटना से मेल नहीं खाता ?

विदूषक—कैसे ?

राम—[illegible]—सीता के [illegible]

है। इस सारी समानता से मैं अभागा बहुत व्याकुल हो रहा हूं। (विकल होता है)

विदूषक--तुम्हारा मतलब है कि ये बालक सीता के ही गर्भ से उत्पन्न हुए हैं ?

राम--नहीं यह नहीं। हाय, तपोवन-निवासी-जनों के साथ ऐसा नाता मैं कैसे जोड़ सकता हूं? किन्तु—

इस सुन्दर जोड़ी का यह कुल,
यह इनकी नव आयु किशोर,
यह उठान, यह रंग देह का,
वैसी ही यह विपद कठोर।
इन आंखों में खींच रहे हैं,
स-सुत-प्रिया की ये तसवीर,
देख देख कर जिसे हो रहा,
मेरा हृदय अधीर अधीर ॥१५॥

(चिन्ता तथा शोक का अभिनय करता है)

(नेपथ्य में)

"इक्ष्वाकु कुल के श्रेष्ठ कुमार कुशलव में से यहां कौन उपस्थित है!"

दोनों--(सुन कर) हम दोनों ही हैं।

(नेपथ्य में)

'अब तक तुमने आज्ञा का पालन क्यों नहीं किया ?'

मुनिवर श्री वाल्मीकि कवीश्वर ने जो अति सुखदाई
कथा महार्थ प्रथम पुरुष की कविता रूप बनाई।
रघुपति को अति मधुर कण्ठ से गाकर वही सुनाना
समय दोपहर के न्हाने का किन्तु चूक मत जाना॥१६॥

दोनों—महाराज ! गुरु जी का दूत हमें शीघ्रता करने के लिये कह रहा है।

राम—मंगलकारी मुनि-आज्ञा का आदर मुझे भी करना ही चाहिये। और भी—

गाने वाले तुम, पुराण कवि, वह मुनिवर व्रतधारी
प्रथम प्रथम ही उतरी पृथिवी पर यह कविता प्यारी।
अतिसुन्दर अरविन्द-नाम की कथा सकल मलहारी
हुआ मेल ही श्रोताओं को सुखद सुमंगलकारी॥१७॥

मित्र ! मनुष्यों में यह कविता का अवतार अपूर्व ही हुआ है तो मैं भी सब इष्ट मित्रों के साथ मिल-कर ही इसे सुनना चाहता हूँ। [illegible] सभासदों को इकट्ठा करलो। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

षष्ठ अङ्क

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—कौशिक के मुख से सुनी महाराज की आज्ञानुसा[र]
सब व्यवस्था कर, मैं अब यहां महाराज के दर्शन कर[ूं]
(देख कर) ये आ ही रहे हैं महाराज—
तीनों अनुजों सहित इधर ही ये आये रघुनाथ।
मानों ऋग् यजु साम वेद हों अश्वमेध के साथ॥

(आगे आगे राम लक्ष्मण और पीछे पीछे कुश लव का प्रवेश)

सब—(चलते हैं)

कंचुकी—(पास जाकर) जय हो महाराज की। यह सभा
मण्डप तय्यार है. ये आप के आसन हैं (स[ब]
बैठते हैं)

कंचुकी—इधर भी देखिये महाराज! ये सब परिजन त[था]
पौर और जनपद भी आपका सत्कार कर रहे हैं

राम—(देख कर) हमारे पास ही यह पर्दे में क्या है

कंचुकी—ये हैं महाराज की माता-महा देवियाँ तीन

तीन आप के अनुजों की हैं वधुएँ प्रणय-प्रवीन ॥

लक्ष्मण—(कंचुकी को लक्ष्य कर) आर्य ! बड़ी भाभी की गिनती तुमने न तो महादेवियों में की, न वधुओं में।

राम—(गरम आह भर कर) कंचुकी ! जाओ तुम अपने स्थान पर।

कंचुकी—जो आज्ञा (जाता है)

राम—महानुभावो ! प्रारम्भ कीजिये—

कुशलव—तीन रानियाँ नृप-दशरथ ने व्याहीं अति-अभिराम
कौशल्या, केकय-नृप-तनया और सुमित्रा नाम।

राम लक्ष्मण—(प्रसन्नता से) कवि ने पिता जी को ही कथा का नायक बनाया है।

(दोनों नमस्कार कर आसन से नीचे खड़े हो जाते हैं)

कुशलव—कौशल्या माता ने जाये राम परम-अभिराम।

लक्ष्मण—(प्रणाम करता है)।

कुशलव—जने केकयी-जननि ने फिर भरत-भव्य गुणधाम ॥
पैदा किये सुमित्रा ने भी दो मित्र-सुत निष्काम।
लक्ष्मीवान सुलक्षण विनयी श्री लक्ष्मण शत्रुघ्न ॥

राम—(लक्ष्मण को आलिंगन करता है)।

कुशलव—शिवधनु तोड़ राम ने पाई सीता जनक-दुलारी।
उनकी भगिनि उर्मिला व्याही लक्ष्मण से सुकुमारी ॥

भरत और शत्रुघ्न रहे दो कुंवर रूप बल-धारी।
उन्हें विवाही गईं कुशध्वज की कन्याएँ प्यारी॥
नव विवाह नववधुएँ सुन्दर नव नव आयु किशोर।
चारों राजकुमार होगए अतिशय प्रेम-विभोर॥

लक्ष्मण—वाह वाह।

राम—देर न करो, गाओ—

पिता वृद्ध, हम बालक छोटे, सिर समुआरे बाल।
पौधे थे—साकेत वाटिका के तब वृक्ष-विशाल॥

कुशलव—

श्री रघुपति के राज-तिलक की मची धूम जिस काल।
और भरत भी गये हुए थे जब अपनी ननिहाल॥

राम—(मन ही मन) निश्चय ही इस प्रसङ्ग में मझली मां को जली कटी सुनाई गई होगी। (प्रकाश) इस प्रक-रण को छोड़ सीता-हरण से शुरू करो।

कुशलव—

शूर्पणखा के मुख से सुनकर सुन्दरता सीता की।
शील नहीं, पर तनु हरली, कर रावण ने चालाकी॥

लक्ष्मण—(राम की तरफ देखता है)

कुशलव—

बना विपुल पुल जलनिधि में, कर रिपु का काम तमाम।

सीता-सहित अयोध्या में फिर आ पहुँचे श्रीराम।

[illegible]—अहो, कैसा संक्षेप है ?

लव—

राज्य प्राप्त कर राम, कभी जन-निन्दा से घबरा कर।
बोले लक्ष्मण से—"सीता को आओ छोड़ कहीं पर" ॥
बहुत विलाप-कलाप मचाती, शोक-विकल बेचारी।
लिये गर्भ में पावन-रघुकुल-संतति सतत दुलारी ॥
सीता को ले साथ, बनैले पशुओं से अति भीषण—
निर्जन वन में छोड़ आगया कठिन-हृदय वह लक्ष्मण ॥

लक्ष्मण—ओह ! यह अपयश लक्ष्मण के मत्थे मढ़ा गया !

राम—इसमें तुम्हारा क्या दोष ? ये सब कारनामे राम के हैं, फिर—

कुशलव—नीति तो यहीं तक है।

राम—(वेदना के साथ) लक्ष्मण ! निर्मम हो गया !

दोनों—राम-लक्ष्मण

वहाँ निरन्तर जनक-तनय ने [illegible] जीवन-[illegible] ।
[illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] ॥

कुश—(स्वगत) ओह ! ये दोनों महाभाग सीता संबन्धी कथा को सुनकर आप व्याकुल हो गये हैं, तो पूछूं इनसे ? (लक्ष्मण को लक्ष्य कर) क्या आप ही दोनों

रामायण कथा के नायक राम लक्ष्मण हैं ?

लक्ष्मण—हां हम ही दुःख भोगने वाले ।

कुश—आप ही सीता को वन में लेगये थे ?

लक्ष्मण—(लज्जा से) हां मैं ही दुई मारा ।

कुश—सीता इन्हीं राम की धर्मपत्नी थीं ?

लक्ष्मण—हां ।

कुश—तो सीता का या उसके गर्भ का कोई वृत्तान्त आप को ज्ञात नहीं ?

लक्ष्मण—ज्ञात हुआ है—तुम्हारे ही संगीत से ।

राम—क्या इसके आगे फिर, कोई शुभसमाचार सुनने को मिलेगा ? (सोच कर) यूँ पूछूँ—महानुभावो ! तुम ने ही यहां तक पढ़ा है या कहानी ही यहां तक है ?

कुश—हम नहीं जानते कुछ भी ।

राम—कण्व से पूछना चाहिए । लक्ष्मण ! कण्व को बुलाओ ।

लक्ष्मण—(जाकर कण्व के साथ पुनः प्रवेश करना है) ।

कण्व—(देख कर) ।

ये सीता-सुत सहित सुशोभित यहां हो रहे राम ।
तिष्य-पुर्नवसु नक्षत्रों से मानों विधु अभिराम ॥

लक्ष्मण—भाई जी ! ये आगये कण्व ।

सीता ने उत्पन्न किये दो युगल-पुत्र अति सुन्दर ॥

लक्ष्मण—जय हो आपकी, फलता फूलता रहे रघु का कुल ।

कुशलव—बधाई ! महाराज को पुत्र जन्म की ।

राम—(मन ही मन) कहीं ये कुशलव ही तो वे नहीं ?

कण्व—करके जातकर्म-सम्बन्धी सारे मङ्गल-काम ।

मुनि ने विधिवत् रक्खे उनके सुन्दर कुशलव नाम ॥

राम—क्या ! ये ही सीता-पुत्र हैं ! हा ! पुत्र कुश, हा ! पुत्र लव !

लक्ष्मण—यही वह सीता के गर्भ से उत्पन्न आप की अपनी सन्तति है ।

कुशलव—यही वह कैसे ? हाय पिता ! रक्षा करो । (आपस में आलिंगन कर मूर्छित होजाते हैं) ।

कण्व (विषाद के साथ) यह क्या गज़ब हो गया, हाय ?
मन्द भाग्य, हित चिन्तक मैं ने करके मंगल-गान ।
इन चारों रघुवीरों का यह किया देह-अवसान ॥
(देख कर) सौभाग्य से सांस तो कुछ चल सा रहा है । चलकर यह समाचार भगवान और देवी को सुनाऊं । (जाता है) ।

(वाल्मीकि और घबराई हुई सीता का प्रवेश) ।

वाल्मीकि—बेटी ! जल्दी, देर न हो । बेहोशी का इलाज

जल्दी न किया जाय तो मृत्यु भी होसकती है।

सीता—कहिये, सच २ कहिये, रघु के ये वंशधर जीते हैं?

वाल्मीकि—शान्त हो, ये जीवित हैं। नहीं देखती इनका श्वास चल रहा है?

सीता—पूरा विश्वास करवा दिया है मुझे आपने।

वाल्मीकि——(सोचकर)

सीता! दृढ़ कर हृदय उधर तो तू करले दृकपात।
तेरी चर्चा-प्रलय-वात ने किया सूर्य-कुल घात॥

सीता—(लजाकर) भगवन्! उनकी आज्ञा है कि मैं उनके सामने न आऊं।

वाल्मीकि—(दृढ़ता से) मेरे सामने रोकने या अनुमति देने वाला कौन? जाओ, वाल्मीकि तुम्हें उसको देखने की आज्ञा देता है। अपने स्वामी के पास देखते जाओ

[illegible]

[illegible]

देती है)।

राम—(होश में आकर) आर्य कण्व ! जीवित है वैदेही ?

वाल्मीकि—सामने ही है।

राम—(देखकर) हैं, आप यहां कैसे ? (लज्जित होता है)।

वाल्मीकि—मत शरमाओ ! शरमाना स्त्रियों का काम है।

लक्ष्मण—(होश में आकर) भाई जी भी होश में आगए या नहीं ?

राम—आगया हूं मैं अभागा।

कुशलव—(होश में आकर) पिता बचाओ।

(पाओं पर गिरपड़ते हैं)

राम लक्ष्मण—(दोनों को हृदय से लगाकर शान्त करते हैं) पुत्रो घबराओ मत।

वाल्मीकि—आह, पिता को देखकर मचल गए। क्यों, किस लिये रोते हो ? पोंछ डालो आंसू।

कुशलव—(आंसू पोंछकर राम को देखते खड़े रहते हैं)।

सीता—(एक ओर को, अलग, कुश लव से) यह कौन है जिसे तुम यूं देख रहे हो ?

राम—ओह, कैसी उदासीनता है सीता की ? इतने दिन बाद प्रथम-मिलन के समय भी एक बार मुख उठाकर मेरी ओर नहीं देखती।

वाल्मीकि—शुद्धि-परीक्षा में सीता की पावक क्रिया प्रमाण।
दिया निरङ्कुशजन-निन्दा को फिर क्यों मन में स्थान?

राम—(हाथ से छूकर रोकता है)।

वाल्मीकि—क्यों, अपने हाथ से मुझे कहने से रोकना चाहता है ?

मन में साधारण जन के ही–सुभग प्रेम की बेल-
सदा पनपती है, न नृपों के, नहीं रेत में तेल ॥
वत्स राम ! सिर क्यों खुजा रहे हो ? कुश लव को स्वीकार करो। हम भी अपना मार्ग लें। (चलता है)।

राम लक्ष्मण—आप प्रसन्नता पूर्वक जा सकते हैं।

वाल्मीकि—(लौट कर) सीते ! तपोवन-निवासियों को भी दण्ड देने का राजा को अधिकार है इसलिये अपने आपको निर्दोष सिद्ध करो।

सीता—इससे क्या होगा ?

वाल्मीकि—तू निर्दोष सिद्ध होगी।

सीता—(लज्जा के साथ) लोगों के बीच में खड़ी होकर यह कहूं कि जनक महाराज की अभागिनी बेटी सीता शुद्ध चरित्र वाली है ?

वाल्मीकि—शपथ के साथ अपनी निर्दोषता की घोषणा कर।

गुरुओं का आदेश टाला नहीं जा सकता । (हाथ जोड़, सब ओर देखकर) हे सब लोकपालो ! आकाश में विचरण करने वाले देव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधरो ! अपने प्रभाव से संसार के सब रहस्यों को प्रत्यक्ष देखने वाले वाल्मीकि, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि महर्षियो ! सारे संसार के शुभाशुभ कर्मों को देखने वाले रघुकुल प्रवर्तक हे भगवान् सूर्य ! सीता अपनी चरित्र-शुद्धि के विषय में शपथ करती है ।

वाल्मीकि—दिव्य शक्तियों की सहायता के बिना ही सीता के केवल पातिव्रत्य के प्रभाव से होने वाले इस आश्चर्य को आप सब देखें—

सब—(आश्चर्य से) देवी के बोलते ही स्थावर-जंगमात्मक यह सारा संसार सब काम छोड़कर निस्तब्ध तथा मौन हो गया । देखो [illegible]

[illegible] हो गये शोर सबके [illegible]

प्रकृति-चपल भी पवन व्योम में हो [illegible]

स्तब्ध खड़ा हो [illegible]

सुनने सीता की [illegible] खड़े स्थान [illegible]

सीता—सारे संसार का कल्याण करने के लिये [illegible]

आज्ञा को शिरोधार्य करनेवाले, उन्नत हुए हजारों बड़े २ पहाड़ों से पुल बनाकर अपार पारावारको विभक्त कर देने वाले, स्वर्ग, मर्त्य, पाताल—तीनों लोकों में अद्वितीय धनुर्धारी रघुकुलनन्दन तुम्हें छोड़कर यदि किसी पर पुरुष को मैंने पति-व्रताओं के विरुद्ध भाव से आंख उठाकर भी नहीं देखा, किसी से एक शब्द भी कुभाव से नहीं बोली, हृदय में कुविचार तक नहीं किया, तो मेरे इस सत्य वचन के प्रभाव से सारे विश्व को अपना दिव्य रूप दिखलाती हुई महाप्रभावा भगवती वसुन्धरा मेरी हृदय-शुद्धि को लोक में प्रकाशित कर दे।

(सब संभ्रम का अभिनय करते हैं)

वाल्मीकि कुछ भी समझ में न आने वाला यह भयानक परिवर्त्तन कैसा ?

इसे देव लोगों के हृदयों में अभूत पूर्व भावों का उदय हो रहा है।

पातालतल में नाद उठ कर,

भर रहा आकाश को।

हिलहिल प्रकाशित कर रहे हैं,

शैल हर्ष-विकाश को।

ये लांघ तटवनरूप सीमा,
को पयोनिधि जोर से।
भारी जलधि को मथ रहे,
इस ओर से उस ओर से॥

सीते! ये सब चिन्ह तेरे ही लिये प्रकट हो रहे हैं, इसलिये फिर एक बार अपनी शपथ को दोहरा दे।

सीता—['सारे संसार का कल्याण…' आदि को दोहराती है]

(नेपथ्य में)

कल्याण हो गौओं का, कल्याण हो ब्राह्मणों का, कल्याण हो रघुकुल का।

खिंची सत्य से सीता के ही, शीघ्र छोड़कर वह पाताल
जल मे मज्जन की लीला से त्याग अचेतन रूप विशाल।
साक्षात् दिव्य-देह कर धारण यह धरणी माता तत्काल
मर्त्यलोक मे प्रकट होरही-मुकुट-सुशोभित सुन्दर भाल॥

सब—(सुनकर आश्चर्य का अभिनय करते है)।

वाल्मीकि—पहिले कभी, न देखे, न सुने गये, ये आश्चर्य पर आश्चर्य कैसे हो रहे है ?

… उठ रही पाताल से नव-ज्योति, शुभ सुरभित पवन
… बह रहे है—होगया जिनसे सुवासित सब भुवन।

यह हाथ जोड़े प्रकट वसुधा होरही सुषमा-स्थली।
लक्ष्मण! झुको, कुश! लव! बखेरो मंजु तुम पुष्पाञ्जली।
सब—(कथनानुसार अभिनय करते हैं)

(समान, बहुमूल्य उज्ज्वल वेषवाली फूल बरसाती हुई बहुत सी स्त्रियों के साथ पाताल-तल को फोड़ती हुई पृथिवी देवी प्रवेश करती है)।

सब—(हाथ जोड़ कर)

तुमने किया जगत् को धारण, तुम्हें शेष ने सिर पर।
इष्ट पदार्थ सुरों ने पाए कभी तुम्हें ही दुह कर॥
देवि! पयोधर-रूप तुम्हारे शिवगिरि विन्ध्य महीधर।
हृदय-हार सुरनदी, मेखला रत्नमयी रत्नाकर॥
यज्ञाङ्गों के लिये इन्द्र बरसाता तुम पर वारी।
तुम करतीं उत्पन्न रत्न सब, ओषधियां भी सारी॥

प्रणाम हो भगवती विश्वम्भरा को। (प्रणाम करते हैं)।

पृथिवी—(चारों ओर देखकर) ओह! प्रतिकार के लिये उद्यत हुई पतिव्रताओं के शासन को कौन उल्लंघन कर सकता है?

सारा जगत जगमगाकर भी दिनकर के कर जहां प्रवेश—
पाते नहीं, मन्द कर लेते गति को अपनी जहां खगेश।
होने से अति दूर पहुंचते जहां न साधारण योगेश—

आगई। मैं जी उठी आज ।

पृथ्वी—बिना विघ्न हों यज्ञ प्रजा में हो न दुःख भय रोग।
मंगलमय हो सब को सीता-रघुपति का संयोग ॥
(अन्तर्धान होती हुई जाती है)

राम—यह क्या ? पृथ्वी अन्तर्धान हो गई ।

वाल्मीकि—देवता लोग किसी के पास देर तक नहीं ठहरते ।

राम—भगवान् की आज्ञा से मैं लक्ष्मण का राज्याभिषेक करना चाहता हूँ ।

लक्ष्मण—(हाथ जोड़कर) आप प्रसन्न हैं तो कृपा कर इस पुराने दास को अनुमति दीजिये कि यह अपना अधिकार कुल के ज्येष्ठ कुमार कुश को दे दे।

वाल्मीकि—लक्ष्मण की प्रार्थना इक्ष्वाकु वंश वालों के अनुरूप ही है।

राम—क्या चारा है ? लक्ष्मण के आग्रह को राम टाल नहीं सकता। यदि लक्ष्मण ने भी फिर यही करना है तो मैं ही पहिले क्यों न करदूं ? अभिषेक की सामग्री ले आओ लक्ष्मण !

लक्ष्मण—भाईजी ! अभिषेक योग्य सब सामग्री हाथों में लिये देवता पहले ही से उपस्थित हैं—देखिये—

पकड़ा हुआ छत्र सुरपति ने धवल चन्द्र सा सुन्दर
शची जान्हवी लिये हुए हैं अपने कर में चामर।

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला

(सम्पादक—श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार)

इस माला में संसार के सारे श्रेष्ठ साहित्य का हिन्दी अनुवाद तथा ऊँचे दर्जे के मौलिक हिन्दी ग्रन्थ प्रकाशित किये जा रहे हैं। कहानी, उपन्यास, प्राचीन साहित्य, कविता, इतिहास, राजनीति, दर्शन आदि अनेक विभागों में विश्व साहित्य ग्रन्थमाला की पुस्तकें प्रकाशित होंगी। स्थायी ग्राहकों को इस माला की सम्पूर्ण पुस्तकें २५ प्रतिशत कमीशन पर दी जावेंगी। स्थायी ग्राहक बनने का चन्दा केवल एक रुपया है।

मैनेजर—
विश्व साहित्य ग्रन्थमाला
मैक्लेगन रोड, लाहौर।